

ललितेश्वर प्रसाद साही

बनाम

बटेश्वर प्रसाद एवं अन्य

7 अक्टूबर 1965

[पी. बी. गर्जेन्द्रगडकर, मुख्य न्यायाधीश, के. एन. वांचू, एम. हिदायतुल्लाह, जे. सी. शाह एवं एस. एम. सिकरी, न्यायमूर्तिगण]

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 - धारा 7 (घ) - सरकार के साथ अनुबंध जो संविधान के अनुच्छेद 299 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं करता है - बाद में सरकार द्वारा अनुसमर्थित नहीं किया गया - क्या उम्मीदवार को निरहित करता है।

अपीलकर्ता द्वारा दायर एक निर्वाचन याचिका में, बिहार विधानसभा के लिए उत्तरदाता के निर्वाचन को मुख्य रूप से इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 7 (घ) के अन्तर्गत निरहित था, क्योंकि उसने राज्य सरकार के साथ एक अनुबंध किया था जो 14 जनवरी, 1962, अर्थात् नामांकन पत्र दाखिल करने के लिए निर्धारित तिथि पर विद्यमान था।

एक व्यक्ति 'एस' ने 1951 में कुछ निर्माण कार्य के लिए राज्य सरकार के साथ एक अनुबंध किया था और उत्तरदाता उसके अन्तर्गत उप-ठेकेदार के रूप में काम कर रहा था। चूंकि 'एस' द्वारा कार्य पूरा करने में देरी आदि हुई थी, इसलिए 'एस' के साथ समझौते की धारा 3 (सी) में राज्य सरकार को आरक्षित शक्ति का प्रयोग करते हुए, जिसके अंतर्गत सरकार कुछ परिस्थितियों में कार्य पूरा करने के लिए वैकल्पिक व्यवस्था कर सकती थी, सरकार के अधिशासी अभियंता ने यह पता लगाने के लिए उत्तरदाता से संपर्क किया कि क्या वह इसके बजाय कार्य पूरा करेगा। अधिशासी अभियंता को संबोधित एक पत्र में, उत्तरदाता ने कुछ शर्तों पर कार्य करने की पेशकश की और इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया।

इसके बाद, कार्य की प्रगति के बारे में एस.डी.ओ. (उपमंडल पदाधिकारी) और अधिशासी अभियंता द्वारा उत्तरदाता के साथ विभिन्न पत्रों का आदान-प्रदान किया गया। हालांकि, उत्तरदाता द्वारा किए जाने वाले अधिकांश कार्य पूरे होने के बाद, 'एस' को ठेकेदार के रूप में बहाल कर दिया गया और उत्तरदाता द्वारा किए गए कार्य और उसके भुगतान के संबंध में आगे का पत्राचार राज्य सरकार के संबंधित अधिकारियों द्वारा 'एस' के साथ किया गया। जनवरी 1962 में नामांकन पत्र दाखिल करने की तिथि पर इस कार्य का भुगतान बकाया था।

निर्वाचन न्यायाधिकरण ने याचिका स्वीकार कर ली और उत्तरदाता के निर्वाचन को शून्य घोषित कर दिया। लेकिन उच्च न्यायालय ने इस निर्णय को उलट दिया और अभिनिर्धारित किया कि उत्तरदाता सभी प्रासंगिक समय पर 'एस' का उप-ठेकेदार बना रहा, और यह मानते हुए भी कि उत्तरदाता और राज्य सरकार के बीच एक अनुबंध था, कथित अनुबंध भारत के संविधान के अनुच्छेद 299 (1) को देखते हुए शून्य था।

इस न्यायालय में अपील पर,

अभिनिर्धारित: (बहुमत के अनुसार)

प्रासंगिक समय पर प्रथम उत्तरदाता और राज्य सरकार के बीच कोई अनुबंध विद्यमान नहीं था और उत्तरदाता धारा 7 (घ) के अन्तर्गत निरहित नहीं था।

इस मामले में पत्राचार ने स्पष्ट रूप से अधिशासी अभियंता और उत्तरदाता के बीच कार्य के निष्पादन के लिए एक समझौते का खुलासा किया, लेकिन यह तथ्य कि 'एस' के साथ अनुबंध की धारा 3 (सी) के आधार पर, सरकार कुछ परिस्थितियों में कार्य करने के लिए किसी और के साथ समझौता कर सकती थी, अनुच्छेद 299 के प्रावधानों के अनुपालन की आवश्यकता को समाप्त नहीं करता था। [70 ई-एफ]

अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य से पता चला कि राज्य सरकार ने उत्तरदाता के साथ समझौते की पुष्टि नहीं करने का फैसला किया था, बल्कि 'एस' के साथ मूल अनुबंध को अभी

भी प्रभावी मानने और उत्तरदाता को 'एस' के अन्तर्गत काम करने वाले उप-ठेकेदार के रूप में मानने का फैसला किया था। [73 एच]

चतर्भुज विट्ठलदास जसानी के मामले ([1954] एस.सी.आर. 817) में यह सिद्धांत कि हालांकि एक अनुबंध अनुच्छेद 299 का अनुपालन नहीं कर सकता है, तथापि ऐसा अनुबंध, यदि सरकार द्वारा अनुमोदन योग्य हो, तो भी धारा 7(घ) के अंतर्गत किसी व्यक्ति को निरहित कर सकता है—को ऐसे मामले पर विस्तारित नहीं किया जा सकता जहाँ सरकार ने वास्तव में उस अनुबंध का अनुमोदन नहीं किया हो। इसके विपरीत मानना धारा 7 (घ) में "अनुबंध" के स्थान पर "समझौता" प्रतिस्थापित करना होगा। अनुच्छेद 299 के उल्लंघन में किया गया एक मात्र समझौता और वास्तव में अनुसमर्थित नहीं किया गया समझौता धारा 7 (घ) के भीतर "अनुबंध" नहीं कहलाया जा सकता। [72 ए-बी]

न्यू मरीन कोल कंपनी (बंगाल) बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 152;
पश्चिम बंगाल राज्य बनाम बी. के. मॉडल ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 779; संदर्भित।

(न्यायमूर्ति हिदायतुल्लाह और शाह के असहमतिपूर्ण विचार के अनुसार);

उपलब्ध साक्ष्य स्पष्ट रूप से इस मामले का समर्थन करते हैं कि कुछ निर्माण कार्य के निष्पादन के लिए प्रथम उत्तरदाता और राज्य के बीच सीधे एक अनुबंध था और यह नहीं कि कार्य प्रथम उत्तरदाता द्वारा 'एस' से प्राप्त उप-अनुबंध के अन्तर्गत किया गया था। न्यायालय को केवल यह निर्धारित करने की आवश्यकता थी कि क्या ऐसा कोई अनुबंध था और उसका इस प्रश्न से कोई सरोकार नहीं था कि क्या अनुबंध राज्य के विरुद्ध प्रवर्तनीय था। [81 जी]

हालांकि अनुबंध अनुच्छेद 299 के अंतर्गत निर्धारित प्रारूप में नहीं था, लेकिन वह उस कारण से अवैध नहीं था। अनुबंध के निष्पादन के तरीके में औपचारिकता की कमी के बावजूद, अनुबंध की शर्तों के अंतर्गत उत्पन्न होने वाले दायित्व को स्वीकार करना राज्य के लिए हमेशा खुला था। ऐसा अनुबंध, हालांकि सरकार के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई द्वारा प्रवर्तनीय

नहीं था, फिर भी धारा 7 (घ) के अन्तर्गत एक व्यक्ति को निरर्हित करने वाला माना जाना था। प्रथम उत्तरदाता ने अनुबंध के अपने हिस्से का पालन किया था लेकिन उसे कोई भुगतान नहीं किया गया था। इसलिए धारा 7 (घ) के अर्थ के भीतर एक विद्यमान अनुबंध था। [79 ए; 80 ए-बी; 91 बी]

चतर्भुज विट्ठलदास जसानी का मामला [1954] एस.सी.आर. 817 लागू किया गया;
भीखराज जयपुरिया बनाम भारत संघ [1962] 2 एस.सी.आर. 830 संदर्भित।

दीवानी अपीलीय अधिकारिता: 1965 की दीवानी अपील संख्या 211

निर्वाचन अपील संख्या 11/1963 में पटना उच्च न्यायालय के 25 अप्रैल, 1964 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील।

अपीलकर्ता के लिए *पुरुषोत्तम त्रिकमदास और डी. गोवर्धन*

उत्तरदाता संख्या 1 के लिए *सरजू प्रसाद, नागेंद्र कुमार राय और के. के. सिन्हा*।

मुख्य न्यायाधीश गजेंद्रगडकर, न्यायमूर्ति वांचू और न्यायमूर्ति सीकरी का निर्णय न्यायमूर्ति सीकरी द्वारा सुनाया गया। न्यायमूर्ति हिदायतुल्लाह और न्यायमूर्ति शाह की असहमतिपूर्ण राय न्यायमूर्ति शाह द्वारा दी गई।

न्यायमूर्ति सीकरी। यह पटना उच्च न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए प्रमाण पत्र द्वारा की गई एक अपील है, जो मुजफ्फरपुर के निर्वाचन न्यायाधिकरण के निर्णय को उलटने वाले उक्त उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है। यह अपील लालगंज उत्तर निर्वाचन क्षेत्र से बिहार विधानसभा के लिए उत्तरदाता, श्री बटेश्वर प्रसाद के निर्वाचन से उत्पन्न हुई है। अपीलकर्ता उम्मीदवारों में से एक था। उसने एक निर्वाचन याचिका संख्या 133/1962 दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह आरोप लगाया गया कि उत्तरदाता संख्या 1, श्री बटेश्वर प्रसाद का निर्वाचन शून्य था क्योंकि वह लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, जिसे इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया है, की धारा 7 (घ) के अन्तर्गत निरर्हित था। उसकी शिकायत यह थी कि उत्तरदाता संख्या 1 ने सरकार के साथ विभिन्न

अनुबंध किए थे और ये अनुबंध 14 जनवरी, 1962, नामांकन पत्र दाखिल करने के लिए निर्धारित तिथि पर विद्यमान थे। निर्वाचन न्यायाधिकरण ने मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्यों की समीक्षा करने के बाद माना कि उत्तरदाता ने पटना मेडिकल अस्पताल के राजेंद्र शल्य खंड में मोज़ेक फर्श का काम करने के लिए अनुबंध किया था और ये नामांकन की तिथि, यानी 14 जनवरी, 1962 को विद्यमान थे। निर्वाचन न्यायाधिकरण ने आगे माना कि समझौते, प्रदर्श 'डी' में निहित शर्तों की धारा 3 (सी) के आधार पर, लोक निर्माण विभाग के लिए उत्तरदाता की कंपनी, जिसे पटना फ्लोरिंग कंपनी कहा जाता है, के साथ अनुबंध करना बिल्कुल भी आवश्यक नहीं था। परिणामस्वरूप, निर्वाचन न्यायाधिकरण ने लालगंज उत्तर निर्वाचन क्षेत्र से बिहार विधानसभा के लिए उत्तरदाता संख्या 1 के निर्वाचन को शून्य घोषित कर दिया, लेकिन उसके समक्ष याचिकाकर्ता की निर्वाचित घोषित होने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया।

दोनों पक्षों ने उच्च न्यायालय में अपील की लेकिन हमारा सरोकार केवल निर्वाचित उम्मीदवार बटेश्वर प्रसाद द्वारा दायर 1963 की निर्वाचन अपील संख्या 11 से है। उच्च न्यायालय के समक्ष तीन बिंदु उठाए गए थे:

(1) अपीलकर्ता राजेंद्र शल्य खंड में किए जाने वाले मोज़ेक कार्य के लिए राज्य सरकार के अन्तर्गत ठेकेदार नहीं था, बल्कि सभी प्रासंगिक समय पर, वह एक जी. पी. सक्सेना के अन्तर्गत उप-ठेकेदार था, जो उस उद्देश्य के लिए राज्य सरकार के अन्तर्गत ठेकेदार था;

(2) यह मानते हुए कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (1951 का अधिनियम 43) की धारा 7 (घ) के अर्थ के भीतर किसी समय अनुबंध था, जब अपीलकर्ता ने 1962 में नामांकन पत्र दाखिल किया था और उसके बाद कोई विद्यमान अनुबंध नहीं था;

(3) फिर से यह मानते हुए कि अपीलकर्ता और राज्य सरकार के बीच किसी समय एक अनुबंध था, कथित अनुबंध भारत के संविधान के अनुच्छेद 299 (1) को देखते हुए

शून्य था, जिससे कि न्यायाधिकरण यह नहीं मान सकता था कि अपीलकर्ता उम्मीदवार के रूप में चुने जाने के लिए निरर्हित था।

उच्च न्यायालय ने पूरे साक्ष्य की समीक्षा की और उपरोक्त बिंदु संख्या 1 पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अपीलकर्ता राज्य सरकार के अन्तर्गत ठेकेदार नहीं था बल्कि मोज़ेक कार्य के लिए सक्सेना के अन्तर्गत उप-ठेकेदार बना रहा। यह प्रदर्श 'डी' की धारा 3 (सी) की व्याख्या पर निर्वाचन न्यायाधिकरण से भी भिन्न था। दूसरे बिंदु पर, उच्च न्यायालय ने महसूस किया कि पहले बिंदु पर उसके निर्णय को देखते हुए, प्रश्न केवल शैक्षणिक रुचि का था और उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में दम हो सकता है कि इस प्रश्न को इस स्तर पर उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। तीसरे बिंदु के संबंध में, उच्च न्यायालय ने माना कि *चतर्भुज का मामला (चतर्भुज विट्ठलदास जसानी बनाम मोरेश्वर परशराम)* अलग था क्योंकि वर्तमान मामले में राज्य सरकार ने अपीलकर्ता द्वारा अनुबंध के प्रदर्शन को स्वीकार नहीं किया था। इसने आगे माना कि *चतर्भुज* के मामले के बाद से धारा 7 (घ) के संशोधन द्वारा कानून में संशोधन किया गया था और संशोधन का प्रभाव यह था "कि उम्मीदवार को सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए केवल तभी निरर्हित किया जाएगा जब प्रासंगिक समय पर उसके और संबंधित सरकार के बीच मूल रूप से अभी भी एक वैध और बाध्यकारी अनुबंध मौजूद हो। "उच्च न्यायालय ने आगे अवलोकन किया कि "उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है कि अनुबंध अधिनियम के अंतर्गत एक लेनदेन शून्य हो सकता है, लेकिन उसका तथ्यात्मक अस्तित्व वर्तमान धारा 7 (घ) के अन्तर्गत अभी भी एक निरर्हता हो सकता है। "अंत में, उच्च न्यायालय ने माना कि बटेश्वर प्रसाद ने अधिनियम की धारा 7 (घ) के अन्तर्गत निरर्हता अर्जित नहीं की थी, और तदनुसार निर्वाचन न्यायाधिकरण के निर्णय और आदेश को अपास्त कर दिया।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पुरुषोत्तम ने हमारे समक्ष तर्क दिया है कि उच्च न्यायालय यह मानने में गलत था कि संशोधन ने इस प्रश्न पर कानून में कोई बदलाव किया

है कि क्या वह अनुबंध जो संविधान के अनुच्छेद 299 के अंतर्गत शून्य है, अधिनियम की धारा 7 (घ) के भीतर अनुबंध है या नहीं। उनका कहना है कि *चतर्भुज*¹ के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का तर्क अभी भी प्रभावी है। फिर उन्होंने कहा कि उच्च न्यायालय इस मामले में तथ्य के प्रश्न पर गलत निष्कर्ष पर पहुँचा, अर्थात्, क्या प्रासंगिक तिथि पर अनुबंध विद्यमान थे या नहीं, और इस न्यायालय को निष्कर्ष को उलट देना चाहिए भले ही वह तथ्य का निष्कर्ष हो। उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता श्री सरजू प्रसाद इस बिंदु का विरोध करते हैं और उनका आग्रह है कि इस न्यायालय को तथ्य के प्रश्न में नहीं जाना चाहिए। कानून के प्रश्न पर, उनका कहना है कि वर्तमान धारा 7 (घ) पुरानी धारा 7 (घ) से काफी अलग है और उच्चतम न्यायालय का निर्णय वर्तमान धारा की शब्दावली पर लागू नहीं किया जा सकता है।

विधि के बिंदु पर आते हुए, पुराने और नए वैधानिक प्रावधानों को निर्धारित करना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं:

"7. कोई व्यक्ति संसद के किसी भी सदन या किसी राज्य की विधानसभा या विधान परिषद के सदस्य के रूप में चुने जाने और होने के लिए निरहित होगा...

(घ) यदि, चाहे वह स्वयं या उसके लिए विश्वास में या उसके लाभ के लिए या उसके खाते में किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के निकाय द्वारा, उपयुक्त सरकार द्वारा किए गए माल की आपूर्ति, या किसी भी कार्य के निष्पादन या किसी भी सेवा के प्रदर्शन के अनुबंध में उसका कोई हिस्सा या हित है;"

संशोधित रूप में:

"7. कोई व्यक्ति संसद के किसी भी सदन या किसी राज्य की विधानसभा या विधान परिषद के सदस्य के रूप में चुने जाने और होने के लिए निरहित होगा...

1 (I) (1954) एस.सी.आर. 817.

(घ) यदि उसके व्यापार या व्यवसाय के दौरान उसके द्वारा उपयुक्त सरकार के साथ माल की आपूर्ति के लिए, या उस सरकार द्वारा किए गए किसी भी कार्य के निष्पादन के लिए किया गया कोई अनुबंध विद्यमान है;"

पुरानी धारा और नई धारा की तुलना करने पर, इसमें कोई संदेह नहीं है कि शब्दावली में बदलाव आया है। एक बदलाव काफी स्पष्ट है और वह यह है कि अब अनुबंध किसी व्यक्ति द्वारा उपयुक्त सरकार के साथ उसके व्यापार या व्यवसाय के दौरान किया गया होना चाहिए। पहले इसके लिए व्यापार या व्यवसाय के दौरान अनुबंध होना आवश्यक नहीं था। शब्द बहुत व्यापक थे और इसमें उसके लाभ के लिए या उसके अपने खाते में किया गया कोई भी अनुबंध या ऐसा अनुबंध जिसमें उसका कोई हिस्सा या हित था, शामिल था। इस सीमा तक विधायिका ने स्पष्ट रूप से इस निरर्हता के क्षेत्र को संकुचित कर दिया है। लेकिन क्या श्री सरजू प्रसाद यह तर्क देने में सही हैं कि परिवर्तन और आगे बढ़ गया है और इसमें केवल निष्पादनीय अनुबंध शामिल हैं, निष्पादित अनुबंध नहीं? हमारी राय में, विधायिका ने इस संबंध में कोई बदलाव नहीं किया है क्योंकि पुराने प्रावधान के अन्तर्गत भी प्रासंगिक समय पर अनुबंध का विद्यमान होना आवश्यक था। इस न्यायालय ने *चतर्भुज* के मामले में निष्पादित और निष्पादनीय दोनों अनुबंधों को धारा 7 (घ) के प्रावधानों के अन्तर्गत शामिल किया था और इसके विपरीत अंग्रेजी फैसलों का पालन करने से इनकार कर दिया था। हम इस प्रश्न में नहीं जा सकते कि यह सही ढंग से किया गया था या नहीं क्योंकि हम उस निर्णय से बाध्य हैं। तदनुसार, *चतर्भुज* के मामले का पालन करते हुए हम यह मानते हैं कि माल की आपूर्ति या किसी कार्य के निष्पादन या की गई किसी सेवा के प्रदर्शन का अनुबंध केवल इसलिए समाप्त नहीं हो जाता है क्योंकि माल की आपूर्ति की जा चुकी है या कार्य निष्पादित किया जा चुका है या सेवाएं प्रदान की जा चुकी हैं। यह तब तक

विद्यमान रहता है जब तक भुगतान नहीं हो जाता और दोनों पक्षों द्वारा प्रदर्शन के माध्यम से अनुबंध पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाता।

लेकिन क्या *चतर्भुज*³ का मामला तब लागू होता है जब सरकार द्वारा शून्य अनुबंध को स्वीकार या अनुसमर्थित नहीं किया गया है, इस पर हम अभी विचार करेंगे। श्री पुरुषोत्तम ने आगे तर्क दिया कि उत्तरदाता ने दो अनुबंध किए थे और वे नामांकन की तिथि पर विद्यमान थे क्योंकि उत्तरदाता को उसके काम के लिए भुगतान नहीं किया गया था और वास्तव में धन की वसूली के लिए सरकार के खिलाफ एक वाद लंबित है। उन्होंने हमें दस्तावेजी साक्ष्य दिखाए हैं और अब उनके साथ निपटना आवश्यक है। दस्तावेजी साक्ष्यों को आसानी से दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है। पहला समूह कथित अनुबंध के गठन से संबंधित दस्तावेजों से संबंधित है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक जी. पी. सक्सेना ने पटना मेडिकल कॉलेज परिसर, पटना में एक शल्य खंड के निर्माण के लिए अनुबंध, प्रदर्श डी., किया था और यह अनुबंध 1951 में किया गया था, और उत्तरदाता उसके अन्तर्गत एक उप-ठेकेदार के रूप में काम कर रहा था। यह आगे प्रतीत होता है कि सक्सेना और लोक निर्माण विभाग के बीच कुछ विवाद थे और वह काम समय पर या उनकी संतुष्टि के अनुसार पूरा नहीं कर रहा था। परिणामस्वरूप, उप-विभागीय अधिकारी ने पटना फ्लोरिंग कंपनी से पूछताछ की कि क्या वे काम पूरा करने के इच्छुक होंगे। पटना फ्लोरिंग कंपनी ने 17 अप्रैल, 1955 को उप-विभागीय अधिकारी के माध्यम से अधिशासी अभियंता को पत्र लिखा और अपनी दरें और नियम व शर्तें दीं। यहाँ यह ध्यान दिया जा सकता है कि ये शर्तें उन शर्तों से भिन्न थीं जिनके अन्तर्गत सक्सेना ने अनुबंध लिया था। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है और इसे ध्यान में रखना आवश्यक है। 25 अप्रैल, 1955 को उप-विभागीय अधिकारी ने इस पत्र को अधिशासी अभियंता को इन टिप्पणियों के साथ अग्रेषित किया कि "ठेकेदार को आपके आदेशानुसार तुरंत काम शुरू करने के लिए कहा जा रहा है।" अधिशासी अभियंता ने इस पत्र

3 (I) (1954] एस.सी.आर. 817.

पर निम्नानुसार टिप्पणी किया: "आशा है कि आपके द्वारा चूककर्ता ठेकेदार को आवश्यक सूचना-पत्र दे दिया गया है।" एस.डी.ओ. (उपमंडल पदाधिकारी) ने टिप्पणी किया कि "ठेकेदार को पहले ही सूचना-पत्र दिया जा चुका है और आपके कार्यालय को एक प्रति टी.ओ. संख्या 497, दिनांक 20 अप्रैल, 1955 द्वारा भेजी जा चुकी है। पी.एफ.सी. को काम शुरू करने का आदेश दिया गया है और उसकी एक प्रति टी.ओ. संख्या 504, दिनांक 20 अप्रैल, 1955 द्वारा आपको प्रस्तुत की गई है।" 20 अप्रैल, 1955 को उप-विभागीय अधिकारी ने पटना फ्लोरिंग कंपनी को लिखा कि "आर. एस. ब्लॉक में शेष मोज़ेक फर्श और डैडो कार्य तुरंत शुरू करें और आपके वादे के अनुसार एक पखवाड़े के भीतर काम पूरी तरह से समाप्त करें।" उन्होंने इस पत्र की एक प्रति अधिशासी अभियंता को पृष्ठांकित की। उन्होंने सक्सेना को एक सूचना-पत्र भी भेजा जिसमें उन्हें सूचित किया गया कि चूंकि वे (बार-बार कहने के बावजूद) शल्य खंड के फर्श और डैडो का शेष मोज़ेक काम करने में विफल रहे हैं, इसलिए शेष काम दूसरी एजेंसी द्वारा करवाया जा रहा है और लागत उनसे वसूल की जाएगी। उन्होंने इसकी एक प्रति अधिशासी अभियंता को यह टिप्पणी करते हुए पृष्ठांकित की कि शेष कार्य उनके निर्देशानुसार पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा किया जा रहा है। 13 मई, 1955 को अधिशासी अभियंता ने पटना फ्लोरिंग कंपनी को निर्धारित समय के भीतर काम पूरा करने की चेतावनी दी और कहा कि यदि काम अधूरा रह गया तो समय में कोई वृद्धि नहीं दी जाएगी। 23 मई, 1955 को उप-विभागीय अधिकारी ने फिर से पटना फ्लोरिंग कंपनी को लिखा कि ढलान आदि के संबंध में आवश्यक निर्देश पहले ही साइट पर दिए जा चुके हैं, काम में देरी का कोई कारण नहीं है और उनसे काम की प्रगति बढ़ाने के लिए कहा क्योंकि यह सर्वोच्च प्राथमिकता वाला काम था। ऐसा प्रतीत होता है कि 25 मई, 1955 तक 90% काम हो चुका था और पटना फ्लोरिंग कंपनी ने उप-विभागीय अधिकारी को पत्र लिखकर अनुरोध किया कि उक्त कार्य के प्रभारी एस.ओ. को शीघ्र भुगतान के लिए एक ऑन अकाउंट बिल प्रस्तुत करने का आदेश दिया जाए।

श्री पुरुषोत्तम का तर्क है कि इस समूह में शामिल पत्राचार को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि अधिशासी अभियंता और पटना फ्लोरिंग कंपनी के बीच कार्य के निर्माण के लिए एक मौखिक अनुबंध हुआ था और उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की थी कि ऐसा कोई अनुबंध कभी अस्तित्व में नहीं आया। उन्होंने बताया कि अनुबंध, प्रदर्श डी, की कंडिका 3 (सी) के अन्तर्गत अधिशासी अभियंता पटना फ्लोरिंग कंपनी को काम करने के लिए कहने के हकदार थे। कंडिका 3 (सी) इस प्रकार है:

"खंड 3. किसी भी मामले में जिसमें इस अनुबंध की किन्हीं धाराओं के अन्तर्गत ठेकेदार ने बिहार के राज्यपाल की ओर से अधिशासी अभियंता के पास सरकारी जमा सुरक्षा (चाहे वह एक राशि में भुगतान की गई हो या किस्तों में काटी गई हो) की पूरी राशि के बराबर मुआवजे का भुगतान करने के लिए खुद को उत्तरदायी बनाया हो, उनके पास निम्नलिखित में से कोई भी तरीका अपनाने की शक्ति होगी, जिसे वे सरकार के हितों के लिए सबसे उपयुक्त समझें...

(सी) ठेकेदार के काम को मापना, और अनुबंध के उस हिस्से को अपने हाथों से लेना जो निष्पादित नहीं किया गया है, और इसे पूरा करने के लिए दूसरे ठेकेदार को देना, जिस स्थिति में मूल ठेकेदार को भुगतान की जाने वाली राशि से अधिक होने वाला कोई भी खर्च (जिस खर्च की राशि के बारे में अधिशासी अभियंता का लिखित प्रमाण पत्र अंतिम और निर्णायक होगा) मूल ठेकेदार द्वारा वहन और भुगतान किया जाएगा और उसे अनुबंध के अन्तर्गत या अन्यथा सरकार द्वारा उसे देय किसी भी पैसे से, या उसकी सुरक्षा जमा या उसकी बिक्री की आय, या उसके पर्याप्त हिस्से से काटा जा सकता है।"

हम श्री पुरुषोत्तम से सहमत होने के इच्छुक हैं कि इस समूह का पत्राचार स्पष्ट रूप से अधिशासी अभियंता और पटना फ्लोरिंग कंपनी के बीच कार्य के निष्पादन के लिए एक समझौते का खुलासा करता है, और निर्वाचन न्यायाधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुँचने में बिल्कुल सही था। लेकिन हम कह सकते हैं कि निर्वाचन न्यायाधिकरण यह मानने में सही

नहीं था कि कंडिका 3 (सी) ने संविधान के अनुच्छेद 299 से छुटकारा दिला दिया। कंडिका 3 (सी) के अन्तर्गत शक्तियों के प्रयोग में दिया गया कोई भी कार्य संविधान के अनुच्छेद 299 के प्रावधानों का भी पालन करना चाहिए। इसका क्या प्रभाव होगा, इस पर हम बाद में विचार करेंगे।

हालाँकि, श्री सरजू प्रसाद का कहना है कि यह मानते हुए कि एक अनुबंध किया गया था, नामांकन के समय अनुबंध विद्यमान नहीं था क्योंकि सरकार ने कंडिका 3 (सी) के अन्तर्गत दिए गए अनुबंध की पुष्टि करने से इनकार कर दिया था और *चतर्भुज*⁴ का मामला यह निर्धारित नहीं करता है कि जिस अनुबंध को सरकार द्वारा अनुसमर्थित नहीं किया गया है, वह अधिनियम की धारा 7 (घ) के भीतर एक अनुबंध है। हमें लगता है कि विद्वान अधिवक्ता के तर्क में बहुत दम है। यह सच है कि इस न्यायालय ने कई मामलों में माना है, जिनमें सबसे ताज़ा *न्यू मरीन कोल कंपनी (बंगाल) बनाम भारत संघ*⁵ है, कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 175 (3) या संविधान के अनुच्छेद 299 के उल्लंघन में सरकार के साथ किया गया अनुबंध शून्य और अप्रवर्तनीय है। लेकिन *पश्चिम बंगाल राज्य बनाम बी. के. मॉडल*⁶ में इस न्यायालय ने *चतर्भुज*⁷ के मामले को इस आधार पर अलग किया कि उत्तरार्द्ध मामले में "यह न्यायालय इस संकीर्ण प्रश्न पर विचार कर रहा था कि क्या माल की आपूर्ति के लिए विवादित अनुबंध इस आधार पर लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 7 (घ) के प्रावधानों को आकर्षित करना बंद कर देगा कि उसने अनुच्छेद 299 (1) के प्रावधानों का पालन नहीं किया, और इस न्यायालय ने माना कि इस तथ्य के बावजूद कि अनुबंध सरकार के खिलाफ लागू नहीं किया जा सकता था, यह एक अनुबंध था जो धारा 7 (घ) की परिधि में आता था।" इस न्यायालय ने आगे अवलोकन किया कि "उक्त टिप्पणी (नीचे उद्धृत, *चतर्भुज*⁸ के मामले में पृष्ठ 835 पर न्यायमूर्ति बोस द्वारा) से इस न्यायालय का अर्थ केवल

4 [1954] एस.सी.आर. 817.

5 ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 152

6 [1954] एस.सी.आर. 817.

7 1954] एस.सी.आर. 817

8 1954] एस.सी.आर. 817

यह था कि अनुच्छेद 299 (1) के उल्लंघन में किया गया अनुबंध सरकार द्वारा अनुसमर्थित किया जा सकता था यदि वह उसके लाभ के लिए था और इस तरह यह ठेकेदार के मामले को धारा 7 (घ) के दायरे से बाहर नहीं ले जा सकता था। जो अनुबंध शून्य है वह अनुसमर्थन के योग्य नहीं हो सकता है, लेकिन चूंकि न्यायालय के अनुसार प्रश्नगत अनुबंध का अनुसमर्थन किया जा सकता था, इसलिए वह उस तकनीकी अर्थ में शून्य नहीं था। प्रश्नगत टिप्पणी का केवल यही उद्देश्य था।" लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या *चतर्भुज*⁹ के मामले को उस मामले तक विस्तारित किया जा सकता है जहां वास्तव में अनुबंध की पुष्टि नहीं की गई है। न्यायमूर्ति बोस ने *चतर्भुज*¹⁰ के मामले में निम्नानुसार अवलोकन किया:

"वर्तमान मामले में, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि प्रशासन बोर्ड के अध्यक्ष ने केंद्र सरकार की ओर से कार्य किया और उस क्षमता में अनुबंध करने के उनके अधिकार पर सवाल नहीं उठाया गया था। इसमें समान रूप से कोई संदेह नहीं हो सकता है कि दोनों पक्षों ने इस विश्वास और इस धारणा पर कार्य किया, जो कि तथ्य भी था, कि माल सरकारी उद्देश्यों के लिए, यानी सैनिकों के लिए सुविधाओं के लिए था। एकमात्र दोष यह है कि अनुबंध उचित प्रारूप में नहीं थे और इसलिए, इस विशुद्ध रूप से तकनीकी दोष के कारण, प्रधान पर वाद नहीं चलाया जा सकता था। लेकिन यह बिल्कुल उसी तरह का मामला है जिसे हल करने के लिए भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 230 (3) बनाई गई है... इसका केवल यही अर्थ है कि प्रधान पर वाद नहीं चलाया जा सकता है; लेकिन हम इसे ऐसा मानते हैं कि अनुसमर्थन को रोकने के लिए कुछ भी नहीं होगा, खासकर यदि वह सरकार के लाभ के लिए था। इस विचार के लिए प्राधिकार मौजूद है कि जब कोई सरकारी अधिकारी अधिकार से बाहर कार्य करता है तो सरकार बाध्य होती है यदि वह उस अधिकता की पुष्टि करती है: देखिए *क्लेक्टर ऑफ मसुलीपट्टम बनाम कैवली वेंकटा नारायणप्पा* (8 एम.आई.ए. 529 पृष्ठ 554)।"

9 1954] एस.सी.आर. 817

10 1954] एस.सी.आर. 817

हमें ऐसा लगता है कि 'चतुर्थज' के मामले में निर्णय को उस मामले तक विस्तारित नहीं किया जा सकता है जहां सरकार ने वास्तव में अनुबंध की पुष्टि नहीं की है। यदि हम यह मानते हैं कि इस प्रकार का लेनदेन इसमें शामिल है, तो हम धारा 7 (घ) में "अनुबंध" शब्द का कोई प्रभाव नहीं देंगे और हम इसके स्थान पर "समझौता" शब्द को प्रतिस्थापित करेंगे। विधायिका ने "समझौता" शब्द का उपयोग करना नहीं चुना है बल्कि "अनुबंध" शब्द का उपयोग किया है। इसलिए, अनुच्छेद 299 के उल्लंघन में किया गया मात्र समझौता और वास्तव में अनुसमर्थित नहीं किया गया समझौता लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 7 (घ) के अन्तर्गत "अनुबंध" नहीं कहा जा सकता।

फिर प्रश्न यह उठता है कि क्या सरकार ने अधिशासी अभियंता और पटना फ्लोरिंग कंपनी के बीच हुए मौखिक अनुबंध की पुष्टि की थी या नहीं। इस संबंध में, श्री सरजू प्रसाद कई दस्तावेजों पर अवलंबन करते हैं। पहला दस्तावेज जिसका वे उल्लेख करते हैं वह प्रदर्श ए-2, दिनांक 12 जुलाई, 1955 है। उप-विभागीय अधिकारी ने पटना फ्लोरिंग कंपनी को निम्नानुसार लिखा:

"यह जानकर निराशा होती है कि मेरे बार-बार कहने के बावजूद आपने अभी तक मोज़ेक कार्य के लिए अपना अंतिम बिल प्रस्तुत नहीं किया है। मैं आपको पूरी स्थिति व्यक्तिगत रूप से समझाता रहा हूँ और आपने शुक्रवार 8 जुलाई, 1955 को अपना अंतिम सही बिल जमा करने का वादा किया था ताकि मैं ठेकेदार श्री जी. पी. सक्सेना को आपको अंतिम भुगतान करने और आपके खातों का तुरंत निस्तारण करने के लिए कह सकूँ।"

ऐसा प्रतीत होता है कि 25 मई, 1955 और 12 जुलाई, 1955 के बीच कुछ हुआ। उत्तरदाता के अनुसार, जो हुआ वह यह था कि सक्सेना ने अधीक्षण अभियंता से संपर्क किया और अधीक्षण अभियंता ने आदेश दिया कि सक्सेना पहले की तरह ठेकेदार बना रहेगा और किसी भी फर्म को कोई अनुबंध नहीं दिया जाएगा। उत्तरदाता ने गवाह उत्तरदाता साक्षी 32 के

रूप में अपने साक्ष्य में यह बताया। इस पर आपत्ति जताई गई है कि यह अनुश्रुत साक्ष्य है और बयान का यह हिस्सा स्वीकार्य नहीं है। इस तर्क में कुछ दम है और हम बयान के इस हिस्से को विचार से हटा देते हैं। लेकिन इस मौखिक साक्ष्य के अलावा इस पत्र से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कुछ हुआ था, अन्यथा इस पत्र में "आपको पूरी स्थिति व्यक्तिगत रूप से समझाते हुए" शब्दों का उपयोग करना आवश्यक नहीं था, और यह समझ से बाहर है कि पटना फ्लोरिंग कंपनी को सक्सेना को बिल जमा करने के लिए क्यों कहा जा रहा था। इस निष्कर्ष को बाद के पत्राचार से बल मिलता है। 13 जुलाई, 1955 के पत्र, प्रदर्श ए-3 द्वारा, एस.डी.ओ. (उपमंडल पदाधिकारी) ने बिल की प्राप्ति स्वीकार की और कहा कि उन्होंने इसे निस्तारण के लिए सक्सेना के पास भेज दिया है। प्रदर्श ए-17, दिनांक 20 जुलाई, 1955 महत्वपूर्ण है। उप-विभागीय अधिकारी ने सक्सेना से अपने ठेकेदारों को आदेश जारी करने का अनुरोध किया कि वे "सभी कटिंग और क्षति को ठीक से और अच्छी तरह से सुधारें ताकि 1-8-1955 को सौंपने के लिए इमारत फिट स्थिति में हो।" 23 जुलाई, 1955 को सक्सेना ने इसे पटना फ्लोरिंग कंपनी को सूचना और आवश्यक कार्रवाई के लिए और पटना फ्लोरिंग कंपनी को बताए गए दोषों को सुधारने और कार्यों के शेष हिस्सों को पूरा करने और निर्धारित तिथि तक उन्हें अंतिम पॉलिश देने के अनुरोध के साथ पृष्ठांकित किया। यह समझ में नहीं आता है कि सक्सेना इसे कार्रवाई के लिए पटना फ्लोरिंग कंपनी को क्यों पृष्ठांकित कर रहे थे जब तक कि सरकार ने पटना फ्लोरिंग कंपनी के साथ अनुबंध की पुष्टि नहीं करने का विकल्प नहीं चुना था और अभी भी उन्हें ठेकेदार के रूप में मान रही थी। यह भी महत्वपूर्ण है कि ऐसा कोई आरोप या सिद्ध नहीं किया गया है कि एस.डी.ओ. (उपमंडल पदाधिकारी) द्वारा सीधे पटना फ्लोरिंग कंपनी को ऐसा कोई पत्र लिखा गया था। 21 जुलाई, 1955 को, "21 जुलाई, 1955 तक राजेंद्र शल्य खंड, पटना मेडिकल कॉलेज और अस्पताल, पटना में मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा किए गए मोजेक कार्य के लिए सही राशि - श्री जी. पी. सक्सेना, प्रॉप. मेसर्स जी. पी. सक्सेना एंड कंपनी और मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी

के बीच लेनदेन" का एक विवरण तैयार किया गया था और खाते के इस विवरण में "बिल संख्या बीपी/1833/45/55, दिनांक 13-7-55 एस.डी.ओ. (उपमंडल पदाधिकारी) संख्या III उप-प्रभाग, निर्माण प्रभाग, पटना के माध्यम से - 14,000/9/- रुपये का बिल" दिखाया गया है और सक्सेना इस बिल का निस्तारण करने के लिए सहमत हुए, और उस विवरण की एक प्रति सक्सेना और प्रसाद के बीच उनकी उपस्थिति और एस.डी.ओ. (उपमंडल पदाधिकारी) की उपस्थिति में हुई चर्चा के संदर्भ में अभिलेख के लिए अधिशासी अभियंता को भेजी गई थी। यह विवरण दर्शाता है कि सरकारी अधिकारी यह स्वीकार कर रहा था कि पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा किए गए कार्य के लिए उत्तरदायित्व सक्सेना का होगा। यदि पटना फ्लोरिंग कंपनी और सरकार के बीच सीधा अनुबंध अभी भी विद्यमान होता, तो यह सारी व्यवस्था अनावश्यक लगती।

श्री सरजू प्रसाद आगे एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर इशारा करते हैं कि जब सक्सेना ने सरकार को बिल प्रस्तुत किया, तो उन्होंने न केवल पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा किए गए कार्य के लिए शुल्क लिया, बल्कि उन्होंने इसे अपने स्वयं के अनुबंध में निहित दरों पर लिया, न कि 14 अप्रैल, 1955 के दर-प्रस्ताव में दी गई दरों पर जो पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा दिया गया था। हम उनसे सहमत हैं कि यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य है और दर्शाता है कि जहाँ तक सरकार का संबंध था, मूल अनुबंध बना रहा और सरकार ने पटना फ्लोरिंग कंपनी को ठेकेदार के रूप में नहीं, बल्कि केवल सक्सेना के अन्तर्गत काम करने वाले उप-ठेकेदार के रूप में मानने का विकल्प चुना था।

श्री पुरुषोत्तम ने 1959 के धन संबंधी वाद संख्या 53 के अभिवचनों पर बहुत अधिक बल दिया। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा दायर धन संबंधी वाद का वाद-पत्र यह दर्शाता है कि वादी, बटेश्वर प्रसाद, यह बताने की कोशिश कर रहा था कि लोक निर्माण विभाग और वादी के बीच एक सीधा अनुबंध हुआ था, लेकिन फिर भी, वाद-पत्र उन्हें पूरी तरह से जिम्मेदार नहीं बनाता है। हमने यह निष्कर्ष भी निकाला है कि शुरुआत में

स्वीकार्य रूप से एक अनुबंध था। यह तथ्य कि वाद-पत्र सरकार द्वारा बाद में स्वीकार न करने या अनुसमर्थन करने से इनकार करने का आरोप नहीं लगाता है, उत्तरदाता को इस मामले में यह साबित करने से नहीं रोकेगा कि अभिलेख पर मौजूद सामग्री से यह स्पष्ट है कि सरकार ने उत्तरदाता के साथ अनुबंध की पुष्टि नहीं की थी बल्कि सक्सेना के साथ मूल अनुबंध की पुष्टि की थी। धन संबंधी वाद में सरकार द्वारा दायर लिखित कथन का उपयोग उन निष्कर्षों को नष्ट करने के लिए नहीं किया जा सकता है जो ऊपर संदर्भित दस्तावेजों से स्पष्ट रूप से उत्पन्न होते हैं। यह संदेहास्पद है कि क्या लिखित कथन पर विचार किया जा सकता है।

परिणामस्वरूप हम मानते हैं कि उत्तरदाता संख्या 1 और सरकार के बीच प्रासंगिक समय, अर्थात् नामांकन की तिथि पर कोई अनुबंध विद्यमान नहीं था, और उत्तरदाता धारा 7 (घ) के अन्तर्गत निरर्हित नहीं था। तदनुसार अपील विफल होती है और लागत के साथ खारिज की जाती है।

न्यायमूर्ति शाह। फरवरी 1962 में आयोजित आम चुनाव में अपीलकर्ता ललितेश्वर प्रसाद शाही और प्रथम उत्तरदाता बटेश्वर प्रसाद ने बिहार विधानसभा के लालगंज उत्तर निर्वाचन क्षेत्र से एक सीट पर चुनाव लड़ा। प्रथम उत्तरदाता को निर्वाचित घोषित किया गया। अपीलकर्ता ने तब निर्वाचन न्यायाधिकरण, मुजफ्फरपुर के समक्ष प्रथम उत्तरदाता के निर्वाचन को इस आधार पर शून्य घोषित करने के आदेश के लिए एक याचिका दायर की कि प्रथम उत्तरदाता बिहार विधानसभा का सदस्य होने के लिए लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 - जिसे इसके बाद 'अधिनियम' कहा गया है - की धारा 7 (घ) के अन्तर्गत निरर्हित था, और इस आदेश के लिए कि अपीलकर्ता को विधिवत निर्वाचित घोषित किया जाए। निर्वाचन न्यायाधिकरण ने अधिनियम की धारा 7 (घ) के अन्तर्गत प्रथम उत्तरदाता को निरर्हित कर दिया क्योंकि न्यायाधिकरण के विचार में जिस तारीख को प्रथम उत्तरदाता ने नामांकन पत्र दाखिल किया था, उस तारीख को उसके और बिहार राज्य के बीच सरकार द्वारा किए गए

कार्यों के निष्पादन के लिए एक विद्यमान अनुबंध था। न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता को विधिवत निर्वाचित घोषित करने से इनकार कर दिया।

न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध, अपीलकर्ता और प्रथम उत्तरदाता द्वारा अधिनियम की धारा 116-ए के अन्तर्गत पटना उच्च न्यायालय में अपील की गई। उच्च न्यायालय के विचार में, प्रथम उत्तरदाता बिहार विधानसभा के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए निरहित नहीं था क्योंकि नामांकन की तिथि पर प्रथम उत्तरदाता और बिहार सरकार के बीच माल की आपूर्ति या कार्यों के निष्पादन के लिए कोई विद्यमान अनुबंध नहीं था। प्रथम उत्तरदाता द्वारा दायर अपील तदनुसार स्वीकार कर ली गई और अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील खारिज कर दी गई। उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए प्रमाण पत्र के साथ, अपीलकर्ता ने यह अपील दायर की है।

प्रासंगिक समय पर अधिनियम की धारा 7 (1) (घ) इस प्रकार थी:

"कोई व्यक्ति संसद के किसी भी सदन, या किसी राज्य की विधानसभा या विधान परिषद के सदस्य के रूप में चुने जाने और होने के लिए निरहित होगा।

(घ) यदि उसके व्यापार या व्यवसाय के दौरान उसके द्वारा उपयुक्त सरकार के साथ माल की आपूर्ति के लिए, या उस सरकार द्वारा किए गए किसी भी कार्य के निष्पादन के लिए किया गया कोई अनुबंध विद्यमान है।"

अपीलकर्ता का तर्क है कि प्रथम उत्तरदाता सदस्य होने के लिए निरहित था क्योंकि उसके और बिहार सरकार के बीच सरकार के लिए कार्यों के निष्पादन से संबंधित एक विद्यमान अनुबंध था। इस अपील में निर्धारित किए जाने वाले मुद्दे के दो घटक हैं: क्या प्रासंगिक समय पर बिहार राज्य और प्रथम उत्तरदाता के बीच प्रथम उत्तरदाता के व्यापार या व्यवसाय के दौरान उस सरकार द्वारा किए गए किसी भी कार्य के निष्पादन के लिए कोई अनुबंध था और क्या प्रासंगिक समय पर अनुबंध विद्यमान था। विचारण न्यायालय ने दोनों

घटकों का उत्तर सकारात्मक रूप में दिया। उच्च न्यायालय का विचार था कि बिहार राज्य और प्रथम उत्तरदाता के बीच किसी भी समय कोई अनुबंध नहीं था।

अपीलकर्ता का मामला यह था कि प्रथम उत्तरदाता और उसके पुत्र भूपेंद्र नाथ प्रसाद मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के नाम से मोज़ेक फर्श, प्लंबिंग और सैनिटरी कार्यों का व्यवसाय करते थे, कि प्रथम उत्तरदाता ने मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी की ओर से पटना जनरल अस्पताल के राजेंद्र शल्य खंड में "मोज़ेक और डैडो कार्य" करने के लिए बिहार सरकार से अनुबंध प्राप्त किए थे, और उक्त अनुबंधों के संबंध में प्रथम उत्तरदाता ने 18,500/- रुपये की डिक्री के लिए बिहार राज्य, अधिशासी अभियंता, लोक निर्माण विभाग (निर्माण प्रभाग संख्या 1) और अन्य के विरुद्ध अधीनस्थ न्यायाधीश, पटना के न्यायालय में 1959 का वाद संख्या 53 दायर किया था और उस वाद के वाद-पत्र में यह दावा किया गया था कि प्रथम उत्तरदाता और बिहार राज्य के बीच एक "सीधा अनुबंध" था, और उस कारण से प्रथम उत्तरदाता अधिनियम की धारा 7 (घ) के अन्तर्गत बिहार विधानसभा का सदस्य होने के लिए निरर्हित था। प्रथम उत्तरदाता ने इस बात से इनकार किया कि वह नामांकन पत्र दाखिल करने की तिथि पर मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के व्यवसाय की देखभाल कर रहा था और तर्क दिया कि पटना मेडिकल कॉलेज जनरल अस्पताल के राजेंद्र शल्य खंड में मोज़ेक कार्य करने का अनुबंध जी.पी. सक्सेना और बिहार सरकार के बीच था, और उसने - प्रथम उत्तरदाता ने - राजेंद्र शल्य खंड में मोज़ेक कार्य करने के लिए बिहार सरकार के साथ कभी कोई अनुबंध नहीं किया था और किसी भी स्थिति में उम्मीदवार के रूप में उसके नामांकन की तिथि पर कोई विद्यमान अनुबंध नहीं था।

अभिलेख पर दस्तावेजी साक्ष्यों का ढेर है जो विवादित प्रश्न पर प्रकाश डालता है। सक्सेना ने मार्च 1951 में पटना में राजेंद्र शल्य खंड के निर्माण कार्य के लिए अपना निविदा प्रस्तुत किया था, जो बिहार सरकार द्वारा किया गया था। अनुबंध की मद संख्या 39 और 40 "मोज़ेक फर्श और डैडो" से संबंधित थी। "मोज़ेक फर्श" के लिए निविदा दी गई और

स्वीकृत दर 2/4/- रुपये प्रति वर्ग फुट थी और "मोज़ेक डैडो" के लिए दर 2/8/- रुपये प्रति वर्ग फुट थी। अनुबंध की शर्तों की कंडिका 2 द्वारा, अन्य बातों के साथ-साथ, यह प्रावधान किया गया था कि ठेकेदार पूरी तत्परता के साथ निर्धारित समय के भीतर कार्य को कड़ाई से पूरा करेगा और ठेकेदार प्रत्येक दिन के लिए जिस दिन कार्य सहमत तिथियों के बाद शुरू नहीं होता या अधूरा रहता है, निविदा द्वारा दिखाए गए पूरे कार्य की अनुमानित लागत के 1/3 प्रतिशत के बराबर मुआवजे की राशि का भुगतान करेगा। कंडिका 3 द्वारा यह प्रावधान किया गया था कि किसी भी मामले में जिसमें ठेकेदार ने सरकार के पास अपनी सुरक्षा जमा की पूरी राशि के बराबर मुआवजे का भुगतान करने के लिए खुद को उत्तरदायी बनाया हो, अधिशासी अभियंता के पास निम्नलिखित में से कोई भी तरीका अपनाने की शक्ति होगी, जिसे वह सरकार के हितों के लिए सबसे उपयुक्त समझे:

- (क) अनुबंध को रद्द करना;
- (ख) कार्य, या कार्य के किसी भी हिस्से को करने के लिए लोक निर्माण विभाग द्वारा भुगतान किए गए श्रम को नियोजित करना, ठेकेदार के खाते में श्रम की लागत डालना;
- (ग) अनुबंध के उस हिस्से को अपने हाथों से लेना जो निष्पादित नहीं किया गया है और इसे पूरा करने के लिए दूसरे ठेकेदार को देना।

प्रथम उत्तरदाता सक्सेना द्वारा किए गए कार्य के कुछ हिस्सों में उनके अन्तर्गत उप-ठेकेदार के रूप में काम कर रहा था। अप्रैल 1956 में, सक्सेना अपने अनुबंध के अन्तर्गत "मोज़ेक फर्श" और "मोज़ेक डैडो" को पूरा करने के लिए अनिच्छुक या असमर्थ था, और उस कार्य को प्रथम उत्तरदाता द्वारा पूरा करने के संबंध में अधिशासी अभियंता, निर्माण प्रभाग और प्रथम उत्तरदाता के बीच बातचीत हुई। 17 अप्रैल, 1955 को, प्रथम उत्तरदाता ने अधिशासी अभियंता को पत्र प्रदर्श 1 (जी) संबोधित किया, जिसमें अधिशासी अभियंता के साथ मोज़ेक कार्य आदि की दरों के संबंध में हुई बातचीत को दर्ज किया गया और अपने नियम और शर्तें प्रस्तुत कीं। प्रथम उत्तरदाता द्वारा प्रस्तावित दरें सक्सेना के साथ अनुबंध की

तुलना में काफी कम थीं, लेकिन उसने अनुरोध किया कि विभाग द्वारा उसके खाते में कुछ निर्माण सामग्री की आपूर्ति की जाए, और उसकी कीमत उसके बिल के विरुद्ध नामे डाली जाए। अधिशासी अभियंता ने इस पत्र पर एक टिप्पणी बनाया "आशा है, चूककर्ता ठेकेदार को आवश्यक सूचना-पत्र दे दिया गया है ..."। 20 अप्रैल, 1955 को उप-विभागीय अधिकारी ने एक टिप्पणी बनाया कि ठेकेदार (सक्सेना) को "पहले ही सूचना-पत्र दिया जा चुका है" और प्रथम उत्तरदाता की फर्म को काम शुरू करने का आदेश दिया गया है। 20 अप्रैल, 1955 को उप-विभागीय अधिकारी ने मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को निम्नानुसार पत्र प्रदर्श 1 (सी) संबोधित किया:

"जैसा कि अधिशासी अभियंता द्वारा आदेश दिया गया है, कृपया आर.एस. ब्लॉक में शेष मोज़ेक फर्श और डैडो कार्य तुरंत शुरू करें और अपने वादे के अनुसार एक पखवाड़े के भीतर काम पूरी तरह से समाप्त करें।"

मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को कार्य सौंपने के बारे में सक्सेना को भी पत्र प्रदर्श 1 (जे) द्वारा सूचना दी गई थी। उस पत्र में कहा गया था:

"चूंकि आप (बार-बार कहने के बावजूद) शल्य खंड में फर्श और डैडो का शेष मोज़ेक कार्य करने में विफल रहे हैं, इसलिए शेष कार्य अन्य एजेंसी द्वारा करवाया जा रहा है और लागत आपके बिल से वसूल की जाएगी, जिसे कृपया टिप्पणी करें।"

मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को 7 मई, 1955 और 13 मई, 1955 और 23 मई, 1955 के पत्रों द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर कार्य पूरा करने के लिए कहा गया था। 25 मई, 1955 को मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी ने उप-विभागीय अधिकारी को एक पत्र संबोधित किया जिसमें उन्हें सूचित किया गया कि उनकी फर्म ने उन्हें सौंपे गए पूरे कार्य का लगभग 90% पूरा कर लिया है, और अनुरोध किया कि उन्हें "ऑन अकाउंट भुगतान" किया जाए। शल्य खंड में मोज़ेक फर्श और डैडो कार्य के संबंध में अभिलेख पर आगे कोई पत्राचार नहीं है। 23 दिसंबर, 1955 को, उप-विभागीय अधिकारी ने अधिशासी अभियंता के "मौखिक आदेश" का

हवाला देते हुए मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को एक पत्र संबोधित किया और कंपनी से "दो स्नानगृहों और लेक्चर थिएटर की प्रयोगशाला" में मोज़ेक कार्य करने का अनुरोध किया और उनसे "निर्देशों के अनुसार कार्य करने" के लिए कहा। 4 अप्रैल, 1956 को मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी ने अधिशासी अभियंता और उप-विभागीय अधिकारी के आदेश पर लेक्चर थिएटर के स्नानगृहों में किए गए "फर्श और डैडो कार्य" के लिए एक बिल प्रस्तुत किया और अनुरोध किया कि उन्हें भुगतान किया जाए। उस पत्र की एक प्रति सूचना और तत्काल भुगतान के लिए किए गए कार्य के बिल की एक प्रति के साथ उप-विभागीय अधिकारी को भेजी गई थी, लेकिन कोई भुगतान नहीं किया गया था। लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों ने, ऐसा प्रतीत होता है, सोचा कि प्रथम उत्तरदाता को सीधे भुगतान करने के बजाय, सक्सेना को मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा किए गए कार्य के लिए उन्हें देय राशि का भुगतान करने के लिए कहा जाना चाहिए। यह अभिलेख पर कई पत्रों से प्रमाणित होता है जिनका हम अभी उल्लेख करेंगे।

इस स्तर पर वृत्तांत में बाधा डालते हुए, यह देखा जा सकता है कि निर्धारित साक्ष्य इसमें कोई संदेह नहीं छोड़ते हैं कि मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी और अधिशासी अभियंता के बीच "मोज़ेक फर्श और डैडो कार्य" करने के लिए बातचीत हुई थी जो उस कार्य का हिस्सा था जिसे सक्सेना ने करने का बीड़ा उठाया था और जिसे वह पूरा करने में विफल रहा था। अधिशासी अभियंता ने मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को वह कार्य करने के लिए कहा और उत्तरार्द्ध ने दरों की अपनी सूची प्रस्तुत की, और कुछ सुविधाओं के लिए कहा जो सक्सेना के अनुबंध का हिस्सा नहीं थीं। हमारे विचार में 17 अप्रैल, 1955 का प्रदर्श 1 (जी) और 20 अप्रैल, 1955 का प्रदर्श 1 (सी) "मोज़ेक और डैडो" कार्य निष्पादित करने के प्रस्ताव और बिहार सरकार की ओर से उसकी स्वीकृति का गठन करते हैं। राजेंद्र शल्य खंड में "मोज़ेक फर्श और डैडो" कार्य का काम जो सक्सेना के अनुबंध का हिस्सा था, जुलाई 1955 में मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा पूरा किया गया था जब सक्सेना को सूचित किया गया था कि

जो कार्य किया जाना बाकी है वह अन्य एजेंसी के माध्यम से पूरा किया जाएगा। इसी तरह अधिशासी अभियंता के निर्देशों के अन्तर्गत उन्होंने जनवरी 1956 के कुछ समय बाद स्नानगृहों और लेक्चर थिएटर में "मोजेक फर्श और डैडो कार्य" का कार्य किया। ये अनुबंध संविधान के अनुच्छेद 299 द्वारा निर्धारित प्रारूप में नहीं थे, और अनुबंधों को राज्य के राज्यपाल द्वारा और राज्यपाल द्वारा निर्देशित तरीके से किया जाना व्यक्त नहीं होने के कारण वे राज्य के विरुद्ध अप्रवर्तनीय थे: देखिए *भीखराज जयपुरिया बनाम भारत संघ*¹²। लेकिन अनुबंध इसलिए अवैध नहीं थे क्योंकि वे संविधान के अनुच्छेद 299 द्वारा निर्धारित तरीके या प्रारूप में निष्पादित नहीं किए गए थे। अनुबंध के निष्पादन के तरीके में अनौपचारिकता के बावजूद अनुबंध की शर्तों के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले दायित्व को स्वीकार करना राज्य के लिए हमेशा खुला है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि अधिशासी अभियंता कार्य की दोनों मदों के संबंध में मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के साथ अनुबंध करने के लिए राज्य की ओर से सक्षम थे। अनुबंध मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के प्रस्ताव और अधिशासी अभियंता द्वारा स्वीकृति के परिणामस्वरूप हुए। इस न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि अधिनियम के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले मामलों में, सरकार के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई द्वारा अप्रवर्तनीय अनुबंध को अभी भी एक ऐसा अनुबंध माना जा सकता है जो किसी व्यक्ति को धारा 7 (घ) के अन्तर्गत विधायिका के सदस्य के रूप में चुनाव के लिए खड़े होने से निरहित करता है: देखिए *चतर्भुज* का मामला¹³। *चतर्भुज* के मामले में कोई भी अनुबंध संविधान के अनुच्छेद 299 द्वारा निर्धारित तरीके से निष्पादित नहीं किया गया था। उस मामले में अनुबंध माल की आपूर्ति के लिए था। न्यायालय ने यह विचार करते हुए कि क्या संविधान के अनुच्छेद 299 द्वारा निर्धारित प्रारूप में नहीं होने वाले अनुबंध का अस्तित्व किसी व्यक्ति को धारा 7 (घ) के अन्तर्गत निरहित करता है, पृष्ठ 835 पर अवलोकन किया:

12 [1962] 2 एस.सी.आर. 880.

13 [1954] एस.सी.आर. 817.

"हमारी राय में, यह मानना विनाशकारी होगा कि सैकड़ों सरकारी अधिकारी जिन्हें दैनिक रूप से विभिन्न प्रकार के अनुबंधों, जो अक्सर तुच्छ प्रकृति के होते हैं, कभी-कभी आपातकाल में, करने पड़ते हैं, वे मौखिक रूप से या पत्राचार के माध्यम से अनुबंध नहीं कर सकते हैं और प्रत्येक तुच्छ अनुबंध एक विशेष प्रारूप में तैयार किए गए भारी-भरकम कानूनी दस्तावेज द्वारा प्रभावी किया जाना चाहिए। यह हो सकता है कि सरकार उस मामले में अनुबंध से बाध्य न हो, लेकिन यह कहना कि अनुबंध अपने आप में शून्य और निष्प्रभावी हैं, एक बहुत ही अलग बात है। इसका केवल यही अर्थ है कि प्रधान पर वाद नहीं चलाया जा सकता है; लेकिन हम इसे ऐसा मानते हैं कि अनुसमर्थन को रोकने के लिए कुछ भी नहीं होगा, विशेष रूप से यदि वह सरकार के लाभ के लिए था। इस विचार के लिए प्राधिकार मौजूद है कि जब कोई सरकारी अधिकारी अधिकार से बाहर कार्य करता है तो सरकार बाध्य होती है यदि वह उस अधिकता की पुष्टि करती है; देखिए *कलेक्टर ऑफ मसुलीपट्टम बनाम कैवली वेंकटा नारायणप्पा* 8 एम.आई.ए. 529 पृष्ठ 554।"

यह भी माना गया कि अधिनियम की धारा 7 (घ) के लिए यह आवश्यक नहीं है कि जिन अनुबंधों पर वह प्रहार करती है, वे सरकार के विरुद्ध प्रवर्तनीय हों: इसके लिए केवल यह आवश्यक है कि "अनुबंध सरकार को माल की आपूर्ति के लिए होना चाहिए।" जैसा कि अवलोकन किया गया, अधिनियम का उद्देश्य विधायिकाओं की पवित्रता बनाए रखना और कर्तव्य और हित के बीच संघर्ष से बचना है, और यह स्पष्ट है कि जब सरकार से पैसा वसूल करने में कुछ कठिनाई होने की संभावना होती है, तो कर्तव्य से पहले हित को रखने का प्रलोभन बहुत बड़ा होता है। इसलिए संविधान के अनुच्छेद 299 की शर्तों के अनुसार औपचारिक अनुबंध की अनुपस्थिति अधिनियम की धारा 7 (घ) द्वारा निर्धारित निरर्हता के संचालन को प्रभावित नहीं करेगी।

दस्तावेजी साक्ष्य से उत्पन्न होने वाला निष्कर्ष, जिसे हमने पहले ही निर्धारित कर दिया है, "मोजेक और डैडो" कार्य के निष्पादन के कई वर्षों बाद प्रथम उत्तरदाता द्वारा की गई

स्वीकारोक्ति से और मजबूत होता है। 3 जनवरी, 1959 को वर्ष 1955-56 में राजेंद्र शल्य खंड और स्नानगृहों तथा लेक्चर थिएटर में "मोजेक फर्श और डैडो कार्य" के लिए उन्हें देय राशि के भुगतान के लिए दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के अन्तर्गत सरकार को दिए गए एक सूचना-पत्र में, मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी ने कहा कि "सक्सेना द्वारा काम को निलंबित करने से लोक निर्माण विभाग के अधिकारी चिंतित हो गए" और उन्होंने उन्हें काम जारी रखने के लिए बुलाया। इसके बाद कंडिका 11 में कहा गया था:

"कि लोक निर्माण विभाग के अधिकारी, जब श्री जी. पी. सक्सेना को काम जारी रखने के लिए मनाने के अपने प्रयास में विफल रहे, तो उन्होंने मेरे उक्त मुवक्किलों में से एक श्री बटेश्वर प्रसाद से सीधे काम हाथ में लेने के लिए संपर्क किया और श्री जी. पी. सक्सेना के बिलों से कटौती करके या सीधे बिल तैयार करके, गारंटी के अनुबंध की प्रकृति में, पूर्ण भुगतान का आश्वासन दिया।"

कंडिका 12 में कहा गया था:

"कि उक्त दृष्टिकोण और आश्वासन के परिणामस्वरूप, मेरे मुवक्किलों की फर्म द्वारा अधिशासी अभियंता को पत्र संख्या बीपी/1763/28/55 दिनांक 17-4-1955 संबोधित किया गया था... उन दरों से कम दरें उद्धृत की गई थीं जिन पर श्री जी. पी. सक्सेना को लोक निर्माण विभाग से काम मिला था, जिसकी पुष्टि पटना निर्माण प्रभाग के उप-विभागीय अधिकारी संख्या III के पत्र संख्या 504, दिनांक 20-4-1955 में की गई थी... जिसमें विभाग ने मेरे मुवक्किलों को शेष कार्य के साथ आगे बढ़ने के लिए कहा था..."

कंडिका 13 में कहा गया था:

"कि दिनांक 20-4-1955 के उक्त पत्र की प्राप्ति पर... मेरे मुवक्किलों ने काम करना शुरू कर दिया और समय-समय पर लोक निर्माण विभाग के स्टोर से सामग्री प्राप्त की।"

कंडिका 14 में कहा गया था:

"कि मेरे मुवक्किलों की फर्म आपके और आपके विभाग के साथ सीधे अनुबंध में थी..."

कंडिका 16 में, अधिशासी अभियंता को कार्य पूरा होने की सूचना देने वाले दिनांक 5 जून, 1955 के पत्र का उल्लेख किया गया है, और यह कहा गया है कि 13 जुलाई, 1955 को मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी ने अधिशासी अभियंता को 14,000/- रुपये का अपना बिल प्रस्तुत किया था। इस सूचना-पत्र के माध्यम से प्रथम उत्तरदाता ने बिहार राज्य से 22,947/07 नए पैसे और मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को हुए नुकसान और हानि के रूप में 5,000/- रुपये की मांग की।

मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा दायर 1959 के वाद संख्या 53 के वाद-पत्र में कंडिका 6, 7 और 8 द्वारा काफी हद तक वही अभिकथन किए गए थे। वाद-पत्र की कंडिका 7 में कहा गया था, "इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वादी और उनकी फर्म ने लोक निर्माण विभाग से सीधे अनुबंध के अन्तर्गत काम शुरू किया था, जो उप-विभागीय अधिकारी संख्या III द्वारा वादी की फर्म को संबोधित पत्र संख्या 705 और 706 दिनांक 23-5-55 से भी स्पष्ट होता है...", और कंडिका 8 में कहा गया था कि "वादियों द्वारा किया गया मोज़ेक कार्य लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों से सीधे अनुबंध के अन्तर्गत किया गया था और श्री जी. पी. सक्सेना का इस मोज़ेक कार्य में कोई हित नहीं था, लेकिन यदि किसी तरह इसे श्री जी. पी. सक्सेना के नाम पर एम.बी. (माप पुस्तिका) में दर्ज किया गया है, तो वादियों के बकाया की सीमा तक भुगतान रोक दिया जाना चाहिए और लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों द्वारा वादियों को उसी का भुगतान किया जाना चाहिए।"

हमें बार में सूचित किया गया है कि 1959 के वाद संख्या 53 का अभी तक निस्तारण नहीं हुआ है।

हमें इस मामले में यह तय करना है कि क्या यह स्थापित है कि बिहार राज्य और प्रथम उत्तरदाता के बीच निर्माण कार्य से संबंधित कोई अनुबंध था, जिसने उसे बिहार

विधायिका का सदस्य होने से निरहित कर दिया। हमें यह तय करने की आवश्यकता नहीं है कि अनुबंध राज्य के विरुद्ध प्रवर्तनीय था या नहीं। हमारे विचार में पहले से ही निर्धारित साक्ष्य इस मामले का भरपूर समर्थन करते हैं कि प्रथम उत्तरदाता और बिहार राज्य के बीच कार्य के निष्पादन से संबंधित सीधे तौर पर एक अनुबंध था, और वह अनुबंध प्रथम उत्तरदाता के व्यापार या व्यवसाय के दौरान किया गया था।

प्रथम उत्तरदाता ने अपने लिखित कथन में तर्क दिया था कि वास्तव में कोई अनुबंध नहीं था और उसने (प्रथम उत्तरदाता ने) सक्सेना के उप-ठेकेदार के रूप में शल्य खंड, स्नानगृहों और लेक्चर थिएटर में "मोज़ेक और डैडो कार्य" पूरा किया था। ऐसा तर्क देते हुए उसने प्रदर्श 1 (जी), 1 (सी) और प्रासंगिक पत्राचार को अनदेखा करने की कोशिश की। निर्वाचन न्यायाधिकरण के समक्ष उस पत्राचार की व्याख्या करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। केवल यह आग्रह किया गया कि मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी और लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों के बीच प्रदर्श 1 (जी) और 1 (सी) और अधिशासी अभियंता तथा सक्सेना के बीच अन्य पत्राचार ने संकेत दिया कि "मोज़ेक फर्श और डैडो कार्य" प्रथम उत्तरदाता द्वारा सक्सेना के एजेंट के रूप में पूरा किया गया था। इस न्यायालय में पहली बार यह तर्क दिया गया है कि यह मानते हुए कि प्रदर्श 1 (जी) और 1 (सी) प्रथम उत्तरदाता द्वारा एक प्रस्ताव और अधिशासी अभियंता द्वारा उसकी स्वीकृति के समान थे, वह प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी और बिहार सरकार के बीच एक बाध्यकारी अनुबंध के समान केवल तभी हो सकती थी, यदि अधीक्षण अभियंता ने अनुबंध को स्वीकार या अनुसमर्थित किया होता और उस आशय के किसी भी साक्ष्य के अभाव में, प्रस्ताव और स्वीकृति ने अधिनियम की धारा 7 (घ) के अन्तर्गत प्रथम उत्तरदाता को निरहित करने वाले किसी भी अनुबंध को जन्म नहीं दिया।

हम तुरंत यह देख सकते हैं कि बाद के पत्राचार और खातों के निस्तारण प्रदर्श जी में कम से कम अस्पष्ट बयान शामिल हैं जो प्रथम उत्तरदाता के पक्ष में कोई निष्कर्ष नहीं

निकालते हैं। हम संक्षेप में इस साक्ष्य का उल्लेख कर सकते हैं। 12 जुलाई, 1955 को उप-विभागीय अधिकारी ने मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को एक पत्र संबोधित करते हुए सूचित किया कि "यह जानकर निराशा होती है कि बार-बार पूछने के बावजूद" फर्म ने उस तारीख तक मोज़ेक कार्य के लिए अपना अंतिम बिल प्रस्तुत नहीं किया था। पत्र में आगे कहा गया, "मैं आपको व्यक्तिगत रूप से पूरी स्थिति समझाता रहा हूँ और आपने शुक्रवार 8 जुलाई, 1955 को अपना अंतिम सही बिल जमा करने का वादा किया था ताकि मैं ठेकेदार श्री जी. पी. सक्सेना को आपको अंतिम भुगतान करने और आपके खातों का तुरंत निस्तारण करने के लिए कह सकूँ।" यह पत्र स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि उप-विभागीय अधिकारी के विचार में बिल प्रथम उत्तरदाता द्वारा लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों को प्रस्तुत किया जाना था और वे सक्सेना को, जिसकी चूक के कारण प्रथम उत्तरदाता के साथ अनुबंध की आवश्यकता हुई थी, उसे देय राशि का भुगतान करने के लिए मनाएंगे। अगला पत्र 13 जुलाई, 1955 का है जो उप-विभागीय अधिकारी द्वारा मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को संबोधित किया गया है जिसमें सूचित किया गया है कि मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी का बिल तत्काल निस्तारण और भुगतान के लिए सक्सेना को भेज दिया गया है, और कंपनी को सक्सेना के साथ खाते का निस्तारण करने और उससे भुगतान प्राप्त करने तथा इस संबंध में लोक निर्माण विभाग के प्राधिकारियों को सूचना दे। 20 जुलाई, 1955 को उप-विभागीय अधिकारी का एक और पत्र है जिसमें पत्र संख्या 949 दिनांक 20 जुलाई, 1955 की एक प्रति संलग्न है जो सक्सेना को संबोधित की गई थी जिसमें उत्तरार्द्ध को अपने ठेकेदारों को आदेश जारी करने के लिए कहा गया था कि वे सभी कटिंग और क्षति को ठीक से सुधारें ताकि इमारत 1 अगस्त, 1955 को सौंपने के लिए फिट स्थिति में हो सके। इस पत्र की एक प्रति मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को उनकी जानकारी और आवश्यक कार्रवाई के लिए भेजी गई थी, और उनसे उन सभी दोषों को सुधारने के लिए कहा गया था जिनकी ओर इशारा किया गया था और निर्धारित तिथि तक शेष कार्य पूरा करने के लिए कहा गया था। यह देखा जा

सकता है कि सक्सेना का पूरा अनुबंध समाप्त नहीं किया गया था: केवल अनुबंध का एक हिस्सा उससे वापस लिया गया था। इसलिए उसे भवन के अनुबंध को पूरा करने और 31 जुलाई, 1955 तक उसे सौंपने के निर्देश दिए जाने थे, और मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को बताए गए सभी दोषों को सुधारने के निर्देश दिए जाने थे। यदि मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी केवल एक उप-ठेकेदार होती, तो कोई कारण नहीं है कि इस पत्र की एक प्रति उन्हें क्यों संबोधित की जानी चाहिए थी और उनसे दोषों को सुधारने के लिए क्यों कहा जाना चाहिए था। 21 जुलाई, 1955 को राजेंद्र शल्य खंड में मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा किए गए मोज़ेक कार्य के संबंध में खाते का एक विवरण तैयार किया गया था। इसे "जी. पी. सक्सेना और मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के बीच मोज़ेक कार्य के खाते का विवरण" के रूप में वर्णित किया गया है। खाते के जमा पक्ष में तीन मदें हैं: 25 नवंबर, 1953 के बिल के संबंध में 57,443/4/3 रुपये; 31 मार्च, 1955 के बिल के संबंध में 4,719/9/3 रुपये और उप-विभागीय अधिकारी संख्या III उप-प्रभाग, निर्माण प्रभाग, पटना के माध्यम से 13 जुलाई, 1955 के बिल के संबंध में 14,000/- रुपये। नामे पक्ष में भुगतान की विभिन्न मदें हैं जिनका कुल योग 49,754/9/3 रुपये है, जिससे 26,408/13/3 रुपये का शेष बचता है। उस राशि के विरुद्ध 15,000/- रुपये का एक चेक बैंक ऑफ बिहार लिमिटेड पर 21 जुलाई, 1955 को दिया गया दर्ज है, जिससे 11,408/13/3 रुपये का शेष बचता है। इस खाते के अंत में दो टिप्पणी हैं। टिप्पणी संख्या (1) का पहला हिस्सा 31 मार्च, 1955 के बिल से संबंधित है जो महत्वपूर्ण नहीं है। इसके बाद इसमें यह दर्ज किया गया है कि मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी क्रमशः 13 जुलाई, 1955 और 31 मार्च, 1955 के बिल संख्या बीपी/1838/35/55 और 93/55 में मोज़ेक कार्य में दोषों के सुधार के लिए जिम्मेदार होगी। टिप्पणी संख्या (2) में कहा गया है कि मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी तीसरे बिल में शामिल कार्य के दावे की राशि तुरंत सक्सेना से वसूल करेगी। इस पर प्रथम उत्तरदाता के हस्ताक्षर हैं। इन दो नोटों के नीचे दो पृष्ठांकन हैं, एक सक्सेना द्वारा हस्ताक्षरित और दूसरा

प्रथम उत्तरदाता द्वारा। सक्सेना द्वारा हस्ताक्षरित पृष्ठांकन में कहा गया है कि खाता सही था और उसने स्वीकार किया कि उससे 11,408/13/3 रुपये देय थे जिसे उसने "बहुत जल्द भुगतान करने" का वादा किया था। इसमें यह भी कहा गया था कि सक्सेना और मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के बीच मूल समझौते की शर्तें भी प्रभावी रहेंगी। प्रथम उत्तरदाता द्वारा हस्ताक्षरित पृष्ठांकन में कहा गया है:

"₹15,000/- के चेक की प्राप्ति स्वीकार की तथा उसे स्वीकार कर लिया गया। हम बहुत कम समय में अंतिम पॉलिश का काम खत्म कर देंगे। चूंकि आज, 21 जुलाई, 1955 को खाते का निस्तारण हो गया है, मैं इसके साथ इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया, पटना पर आहरित चेक संख्या बीजेड/131 08046 दिनांक 18-1-55 राशि 12,000/- रुपये वापस कर रहा हूँ और अब शेष राशि निस्तारण के अनुसार उल्लिखित 11,408/13/3 रुपये है, जो बैंक ऑफ बिहार लिमिटेड पटना पर आज के चेक संख्या जी140696 दिनांक 21-7-1955 के नकदीकरण के अधीन है।"

इस खाते की एक प्रति उप-विभागीय अधिकारी के माध्यम से अधिशासी अभियंता, निर्माण प्रभाग को "उनकी उपस्थिति और उप-विभागीय अधिकारी संख्या III उप-प्रभाग की उपस्थिति में 'सक्सेना और प्रथम उत्तरदाता' के बीच हुई चर्चा के संदर्भ में सूचना और अभिलेख के लिए" अग्रेषित की गई थी। प्रथम उत्तरदाता के अधिवक्ता द्वारा इस दस्तावेज़ पर उनके इस दावे के समर्थन में गहरा अवलंबन जताया गया था कि वास्तव में बिहार राज्य के लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों और प्रथम उत्तरदाता के बीच कोई अनुबंध नहीं था, बल्कि अनुबंध सभी महत्वपूर्ण समय पर सक्सेना और बिहार राज्य के बीच बना रहा। इस तर्क पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, हमारे विचार में, यह दस्तावेज़ इस तरह की किसी भी व्याख्या के योग्य नहीं है। लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों ने यह रुख अपनाया था कि भले ही वे प्रदर्श 1 (जी) और 1 (सी) द्वारा उनके बीच हुई व्यवस्था के अन्तर्गत किए गए कार्य के लिए मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के बिल का भुगतान करने के

लिए उत्तरदायी थे, फिर भी वे सक्सेना से देय राशि का भुगतान प्राप्त करवाएंगे। प्रथम उत्तरदाता ने स्वीकार्य रूप से सक्सेना के उप-ठेकेदार के रूप में 25 नवंबर, 1953 और 31 मार्च, 1955 के दो बिलों के संबंध में काम किया था। प्रथम उत्तरदाता द्वारा किए गए कार्य के लिए 14,000/- रुपये का तीसरा बिल प्रस्तुत किया गया था जिसके लिए बिल उप-विभागीय अधिकारी को भेजा गया था। सक्सेना स्पष्ट रूप से भुगतान करने से इनकार कर रहा था, और अधिशासी अभियंता और उप-विभागीय अधिकारी की उपस्थिति में एक बैठक आयोजित की गई थी जिसमें एक समेकित खाता बनाया गया था और सक्सेना 26,408/13/3 रुपये के शेष का भुगतान करने के लिए सहमत हुआ और जिसके विरुद्ध उसने 15,000/- रुपये का चेक दिया। खाते के इस विवरण का उपयोग प्रथम उत्तरदाता के इस मामले के समर्थन में संभवतः नहीं किया जा सकता है कि उसके और बिहार राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों के बीच कोई अनुबंध नहीं था: यह केवल प्रथम उत्तरदाता और सक्सेना के बीच अधिशासी अभियंता और उप-विभागीय अधिकारी की उपस्थिति में हुआ एक समझौता है जिसके अन्तर्गत सक्सेना समेकित खाते पर बकाया 11,408/13/3 रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए सहमत हुआ। अधिशासी अभियंता और उप-विभागीय अधिकारी के कहने पर हुए समझौते का उद्देश्य उस अनुबंध को समाप्त करना नहीं है जो पहले हुआ था और उस अनुबंध के अनुसरण में किए गए निर्माण कार्य को समाप्त करना नहीं है, और सक्सेना के हस्ताक्षर के अन्तर्गत केवल यह पृष्ठांकन कि उसके और मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के बीच मूल समझौते की शर्तें भी प्रभावी रहेंगी, केवल यह इंगित करता है कि मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी सक्सेना के उप-ठेकेदार के रूप में काम करना जारी रख सकती है, ताकि यह आभास न हो कि सक्सेना और मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के बीच उप-अनुबंध समाप्त हो गया था।

जिस कार्य को सक्सेना पूरा करने में विफल रहा, उसके लिए वह अपने अनुबंध की शर्तों के अन्तर्गत सरकार को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी था। अधिशासी अभियंता ने

सक्सेना को सूचित किया था कि प्रथम उत्तरदाता को देय राशि उसके बिल से काट ली जाएगी, और विभिन्न अवसरों पर सक्सेना को प्रथम उत्तरदाता को देय राशि का भुगतान करने के लिए बुलाया था। प्रथम उत्तरदाता को केवल उसे देय धन प्राप्त करने की चिंता थी, और उसके लिए यह कोई मायने नहीं रखता था कि सरकार ने इसका सीधे भुगतान किया या अधिकारियों ने सक्सेना से इसका भुगतान करवाया। लोक निर्माण विभाग के अनुबंधों में सरकार के साथ एक ठेकेदार के रूप में अपनी स्थिति को खतरे में न डालने की प्रथम उत्तरदाता की इच्छा को अच्छी तरह से समझा जा सकता है। यह समझना मुश्किल है कि अधिशासी अभियंता की उपस्थिति में किया गया यह समझौता, जिसके द्वारा सक्सेना ने अपने अनुबंध के अन्तर्गत अपने स्वयं के दायित्व के निर्वहन के बदले में सरकार के दायित्व को निभाने पर सहमति व्यक्त की, बिहार सरकार और प्रथम उत्तरदाता के बीच अनुबंध के अस्तित्व को कैसे नकारता है।

अभिलेख पर प्रथम उत्तरदाता द्वारा भुगतान की मांगों से संबंधित पत्राचार है। 28 मार्च, 1956 को सक्सेना द्वारा अधिशासी अभियंता को एक पत्र संबोधित किया गया था जिसमें उन्हें सूचित किया गया था कि मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी ने उन्हें अपना बिल नहीं भेजा है और उन्हें अपने बिल की एक प्रति प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जा सकता है ताकि वे इसकी जांच कर सकें और भुगतान की व्यवस्था कर सकें। यह पत्र दिसंबर 1955 के बाद किए गए कार्य के भुगतान को संदर्भित करता है, क्योंकि जुलाई 1955 में किए गए कार्य के संबंध में बिल पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका था और खाते के निस्तारण प्रदर्श जी का विषय था। 21 अगस्त, 1957, 7 दिसंबर, 1957 और 8 मार्च, 1958 के पत्र हैं जिनमें अधिशासी अभियंता ने सक्सेना को मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के दावे का निस्तारण करने के लिए कहा था। 16 मार्च, 1958 का अधिशासी अभियंता के एक पत्र का मसौदा है जिसमें उल्लेख किया गया है कि सक्सेना से कई बार दावे को सौहार्दपूर्ण ढंग से निस्तारण करने का अनुरोध किया गया था "लेकिन वह ऐसा करने के मूड में नहीं था और विभाग को

मुकदमेबाजी में खींचना चाहता था"। उस पत्र की दूसरी कंडिका महत्वपूर्ण है। यह कहती है:

"वास्तव में जब श्री सक्सेना कार्य की विशेष मद को पूरा करने में विफल रहे, तो तत्कालीन विभागीय अधिकारी के कहने पर मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को लगाया गया था। उन्हें सामग्री भी जारी की गई थी, जिसकी लागत अभी भी उनके विरुद्ध बकाया है। और इस प्रकार विभाग को उनके द्वारा किए गए कार्य के लिए मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को प्रश्नगत राशि का भुगतान करना होगा। यहाँ यह जोड़ा जा सकता है कि इस समय तक यहाँ किए गए कार्य का बिल पहले ही श्री जी.पी. सक्सेना के पक्ष में बनाया जा चुका है। इस मामले में सही प्रक्रिया विभाग के लिए मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को भुगतान करने की होती।"

अंतिम कंडिका द्वारा यह दर्ज किया गया है कि सक्सेना को मामले को सौहार्दपूर्ण ढंग से निस्तारण करने और मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी से शोधन प्रमाण पत्र प्राप्त करने की सलाह दी जा सकती है। अधीक्षण अभियंता ने भी 26 मई, 1958 को सक्सेना को एक पत्र संबोधित किया जिसमें उन्हें एक महीने के भीतर मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के साथ मामले को सौहार्दपूर्ण ढंग से निस्तारण करने के लिए कहा गया और धमकी दी गई कि देय राशि उनके अंतिम बिल से काट ली जाएगी। इस पत्र की एक प्रति मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को अग्रेषित की गई थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि 25 जुलाई, 1958 को सक्सेना ने अपने द्वारा किए गए निर्माण कार्य के बारे में एक विवरण प्रस्तुत किया और उसमें मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा किए गए कार्य को शामिल किया। बिल के अंत में समय-समय पर किए गए भुगतानों से संबंधित एक ज्ञापन है और उसमें दिखाई गई अंतिम मद मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को देय 13,897/- रुपये है। सक्सेना द्वारा मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को राशि का भुगतान न किए जाने पर, अधिशासी अभियंता द्वारा सक्सेना को 10 सितंबर, 1958 का एक पत्र संबोधित किया गया था जिसमें यह दर्ज किया गया था कि आयकर बकाया के कारण रोक

कर रखी गई सुरक्षा जमा की वापसी के समय ठेकेदार के प्रतिनिधि ने अपने कार्यालय में अधिशासी अभियंता से मुलाकात की थी और वादा किया था कि वह मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के साथ खाते का निस्तारण करेगा और उनके बकाया का भुगतान तुरंत करेगा, और हालांकि राशि की वापसी पहले ही दी जा चुकी थी लेकिन मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के बकाया का शोधन नहीं किया गया था। सक्सेना से एक बार फिर मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के बकाया का शोधन करने का अनुरोध किया गया ताकि जमा रखी गई राशि की वापसी उन्हें दी जा सके।

यह वह सारा महत्वपूर्ण पत्राचार है जिस पर प्रथम उत्तरदाता ने अवलंबन किया है। पत्राचार यह प्रचुरता से स्पष्ट करता है कि भुगतान के लिए प्राथमिक उत्तरदायित्व बिहार राज्य का था और उन्होंने उस उत्तरदायित्व को स्वीकार किया। मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी का बिल लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों द्वारा प्राप्त किया गया था और उन्होंने सक्सेना को दावे को संतुष्ट करने के लिए कहा क्योंकि अनुबंध की शर्तों के अन्तर्गत भुगतान का उत्तरदायित्व अंततः सक्सेना के विरुद्ध लागू किया जाएगा। इनमें से कोई भी पत्र परोक्ष रूप से भी यह सुझाव नहीं देता है कि मोज़ेक फर्श और डैडो कार्य के मामले में मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा किया गया कार्य उस उप-अनुबंध के निष्पादन में किया गया था जो उस कंपनी ने सक्सेना से प्राप्त किया था। अधीक्षण अभियंता, अधिशासी अभियंता और उप-विभागीय अधिकारी द्वारा दिखाई गई यह चिंता कि मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के दावे का निस्तारण सक्सेना के माध्यम से भुगतान द्वारा किया जाए, इस मामले के अनुरूप है कि प्राथमिक उत्तरदायित्व बिहार राज्य का था और लोक निर्माण विभाग के अधिकारी मुकदमेबाजी से बचना चाहते थे। जिन दस्तावेजों का हमने पहले ही उल्लेख किया है, उनके संदर्भ में अधिकारियों का आचरण हमारे विचार में केवल इसी निष्कर्ष के साथ सुसंगत है कि निर्माण कार्य मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा सीधे लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों के साथ एक अनुबंध के अन्तर्गत किया गया था।

मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी अनुमोदित ठेकेदार थे और यदि उन्हें यह विश्वास दिलाया गया कि सक्सेना को उन्हें देय राशि का भुगतान करने के लिए प्रेरित किया जाएगा, तो उनसे यह अपेक्षा नहीं की गई थी कि वे राज्य द्वारा सीधे भुगतान पर जोर देकर अधिकारियों की नाराजगी मोल लेंगे। प्रदर्श 1 (जी) और 1 (सी) में शामिल प्रस्ताव और स्वीकृति, उसके बाद मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा किया गया निर्माण कार्य, उसके बाद भुगतान के लिए मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी द्वारा बिलों का प्रस्तुतीकरण, लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों की यह चिंता कि भुगतान मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को किया जाना चाहिए और भुगतान सुरक्षित करने में उनका हस्तक्षेप और मुकदमेबाजी से बचने की चिंता स्पष्ट रूप से स्थापित करती है कि वह अनुबंध जिसके अनुसरण में मोज़ेक फर्श और डैंडो का कार्य किया गया था, सीधे मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी और सरकार के बीच था। अनुबंध अनधिकृत नहीं था और इसलिए अनुसमर्थन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यह भी देखा जा सकता है कि अनुबंध के लिए अनुसमर्थन की आवश्यकता थी और उसे अनुसमर्थित नहीं किया गया था, यह विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय में कभी नहीं उठाया गया था।

यह तर्क कि अनुबंध होने के बाद, अधीक्षण अभियंता ने व्यवस्था को रद्द कर दिया था, हमारे निर्णय में निराधार है। 16 मई, 1958 के पत्र पर संभवतः अधिशासी अभियंता द्वारा एक पृष्ठांकन है जिसमें यह दर्ज किया गया है कि मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को सक्सेना द्वारा अधूरा छोड़े गए कार्य को पूरा करने के लिए तत्कालीन विभागीय अधिकारियों के कहने पर लगाया गया था, और इसके बाद एक प्रश्न है, क्या इस व्यवस्था के लिए अधीक्षण अभियंता की मंजूरी ली गई थी, यदि हाँ, तो पत्राचार की प्रतियां कृपया प्रस्तुत की जाएं? इस प्रश्न के दिए गए किसी भी उत्तर का कोई अभिलेख नहीं है। हालांकि, पत्र के अंत में किसी के द्वारा किया गया 17 मई, 1958 का एक पृष्ठांकन है, ठेकेदार को लिखें। यह सच है कि अधीक्षण अभियंता निर्माण कार्य के समग्र प्रभारी थे और निविदा की शर्तों के अनुसार ही निविदा स्वीकार करने का अधिशासी अभियंता का अधिकार सीमित है: निविदा प्रदर्श डी के

प्रारूप की कंडिका 9। लेकिन अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि अधीक्षण अभियंता ने किसी भी समय अधिशासी अभियंता और मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी के बीच की व्यवस्था को रद्द किया था। विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी परीक्षा में प्रथम उत्तरदाता ने कहा कि:

"मैंने प्रदर्श 1 (जी) उप-विभागीय अधिकारी, लोक निर्माण विभाग संख्या 3 को भेजा था, जिसमें उन दरों और शर्तों का उल्लेख था जो मेरी फर्म के राजेंद्र शल्य खंड में मोज़ेक और डैडो कार्य के निर्माण के लिए जी. पी. सक्सेना के साथ थीं। इस पत्र प्रदर्श 1 (जी) के बाद भी लोक निर्माण विभाग और मेरी फर्म के बीच कभी कोई सीधा अनुबंध नहीं हुआ। सक्सेना अधीक्षण अभियंता के पास गए और विरोध किया। अधीक्षण अभियंता ने आदेश दिया कि सक्सेना पहले की तरह ठेकेदार बने रहेंगे और किसी भी फर्म को कोई सीधा अनुबंध नहीं दिया जाएगा।"

लेकिन यह सुझाव नहीं दिया गया है कि प्रथम उत्तरदाता की उपस्थिति में ऐसी कोई व्यवस्था हुई थी। अधीक्षण अभियंता की परीक्षा नहीं की गई है, और अभिलेख पर मामले के इस हिस्से का समर्थन करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है, जिसे विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय में कभी भी प्रस्तुत नहीं किया गया था।

अपने सूचना-पत्र और 1959 के वाद संख्या 53 के वाद-पत्र में प्रथम उत्तरदाता द्वारा की गई स्वीकारोक्तियों को उनके द्वारा इस दलील पर समझाने की कोशिश की गई थी कि उन्होंने वाद-पत्र को पढ़े बिना ही वाद-पत्र और सत्यापन पर हस्ताक्षर किए थे क्योंकि वाद-पत्र को बहुत जल्दी में दायर करने की आवश्यकता थी। सूचना-पत्र की सामग्री के संबंध में भी इसी तरह का स्पष्टीकरण दिया गया था। इस स्पष्टीकरण को स्वीकार करना कठिन है जो असुविधाजनक स्वीकारोक्तियों से बाहर निकलने के उद्देश्य से गढ़ा गया था। अधिशासी अभियंता मुक्तेश्वर प्रसाद ने अपने साक्ष्य में कहा कि उप-विभागीय अधिकारी ने सक्सेना को चेतावनी दी थी कि उनका अनुबंध समाप्त कर दिया जाएगा और कार्य का एक हिस्सा दूसरी एजेंसी के माध्यम से किया जाएगा और उसके बाद मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को काम

पूरा करने के लिए लगाया गया था। मुक्तेश्वर प्रसाद के बाद अधिशासी अभियंता बने रामेश्वर प्रसाद सिंह ने भी कहा कि मोजेक कार्य का अनिष्पादित हिस्सा सक्सेना से वापस ले लिया गया था और सीधे मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को सौंपा गया था और मेसर्स पटना फ्लोरिंग कंपनी को कार्य पूरा करने का निर्देश दिया गया था। इनमें से किसी भी गवाह को यह सुझाव नहीं दिया गया था कि व्यवस्था को अधीक्षण अभियंता द्वारा रद्द कर दिया गया था।

प्रथम उत्तरदाता ने न्यायालय का दरवाजा खटखटाते हुए इस बात से इंकार किया कि उसके और बिहार राज्य के मध्य उक्त निर्माण कार्य के संबंध में कोई अनुबंध अस्तित्व में था। वह इनकार पत्रों प्रदर्श 1 (जी) और 1 (आई) द्वारा मिथ्या सिद्ध होता है और उनके वाद-पत्र में शपथ पर दिए गए उनके बयानों द्वारा और अधिक मिथ्या सिद्ध होता है। अपनी स्वयं की स्वीकारोक्तियों पर, प्रथम उत्तरदाता एक ऐसा व्यक्ति है जो अपने हितों की मांग के अनुसार हवा के रुख के अनुसार चलने को तैयार है। वाद-पत्र में अपने द्वारा की गई स्वीकारोक्तियों के संबंध में प्रथम उत्तरदाता द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण सत्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। सभी परिस्थितियों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, हम उच्च न्यायालय के साथ इस बात पर सहमत होने में असमर्थ हैं कि प्रदर्श 1 (जी) और 1 (सी) द्वारा मोजेक और डैडो कार्य के संबंध में बिहार राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों और प्रथम उत्तरदाता के बीच कोई अनुबंध नहीं था जिसके अनुसरण में प्रथम उत्तरदाता ने सक्सेना से स्वतंत्र होकर कार्य किया।

अब यह विचार करना बाकी है कि क्या नामांकन पत्र दाखिल करने की तिथि पर कोई विद्यमान अनुबंध था। प्रथम उत्तरदाता को सौंपा गया निर्माण कार्य जुलाई 1955 में पूरा हो गया था और स्नानगृहों और लेक्चर थिएटर के संबंध में अप्रैल 1956 से कुछ समय पहले पूरा हो गया था। प्रथम उत्तरदाता को उसे देय राशियों का भुगतान नहीं किया गया था। यह नहीं कहा जा सकता कि बिहार राज्य द्वारा अपनाए गए रुख को देखते हुए अनुबंध का उल्लंघन हुआ है। अधिनियम की धारा 7 (घ) में वाक्यांश "विद्यमान अनुबंध है" में वे मामले

शामिल हैं जिनमें एक पक्ष ने अनुबंध के अपने हिस्से का पालन कर दिया है और दूसरे पक्ष द्वारा पालन किया जाने वाला हिस्सा बाकी है। चतर्भुज¹⁴ के मामले में इस न्यायालय द्वारा ऐसा ही माना गया था। उस मामले के मुख्य टिप्पणी की पहली कंडिका में कहा गया है:

"माल की आपूर्ति के लिए अनुबंध तब समाप्त नहीं होता जब माल की आपूर्ति कर दी जाती है, यह तब तक बना रहता है जब तक भुगतान नहीं किया जाता है और अनुबंध दोनों पक्षों द्वारा पालन के माध्यम से पूरी तरह से निर्वहन नहीं हो जाता है।"

उस मामले में मध्य प्रदेश राज्य की ओर से किए गए एक मौखिक अनुरोध के अनुसरण में, चतर्भुज जसानी ने 8 अक्टूबर, 1951 से 23 जनवरी, 1952 के बीच कैंटीन स्टोर की आपूर्ति की थी, और उसके संबंध में चालान प्रस्तुत किए थे। उन चालानों के संबंध में 15 नवंबर, 1951 और 20 मार्च, 1952 के बीच भुगतान किए गए थे। संसद के चुनाव दिसंबर 1951 में हुए थे, और जसानी आपूर्ति किए गए स्टोर के भुगतान से पहले दो सीटों में से एक के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए थे। न्यायालय ने निर्वाचित उम्मीदवार की ओर से उठाई गई इस दलील को स्वीकार करने से इनकार कर दिया कि जैसे ही उम्मीदवार द्वारा अनुबंध पूरी तरह से निष्पादित कर दिया जाता है, अनुबंध समाप्त हो जाता है और लेनदार और देनदार का एक नया संबंध उसका स्थान ले लेता है। यह सच है कि उस मामले में विचार किए जाने वाले अधिनियम की धारा 7 (घ) के महत्वपूर्ण शब्द कुछ अलग थे। वे इस प्रकार थे:

"कोई व्यक्ति संसद के किसी भी सदन या किसी राज्य की विधानसभा या विधान परिषद के सदस्य के रूप में चुने जाने और होने के लिए निरहित होगा...

(घ) "यदि वह स्वयं, अथवा उसके लिए, उसके लाभार्थ, उसके खाते पर या उसके हित में न्यास के रूप में कार्य करने वाले किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय के माध्यम से, उपयुक्त सरकार को माल की आपूर्ति करने अथवा उसके द्वारा कराए जाने वाले किसी

14 [1954] एस.सी.आर. 817.

निर्माण कार्य के निष्पादन या किसी सेवा के संपादन संबंधी किसी संविदा में कोई हिस्सा या हित रखता हो;"

धारा के अन्तर्गत निरहित होने की शर्तें उस समय अधिक व्यापक थीं जैसी कि वे तब थीं। माल की आपूर्ति के लिए, या किए गए किसी भी कार्य के निष्पादन या किसी सेवा के प्रदर्शन के लिए अनुबंध में कोई भी हिस्सा या हित, चाहे वह स्वयं द्वारा हो या उसके लिए विश्वास में या उसके लाभ के लिए या उसके खाते में व्यक्तियों के किसी व्यक्ति या निकाय द्वारा हो, एक उम्मीदवार को विधायिका के सदस्य के रूप में चुने जाने से निरहित करता था। संशोधित अधिनियम ने अब उन शर्तों को सीमित कर दिया है जो निरहित करती हैं। अब दो शर्तें यह हैं कि अनुबंध उम्मीदवार के व्यापार या व्यवसाय के दौरान होना चाहिए, और यह माल की आपूर्ति के लिए या सरकार द्वारा किए गए किसी भी कार्य के निष्पादन के लिए होना चाहिए। उपयुक्त सरकार के लिए की गई सेवाओं के संबंध में अनुबंध स्पष्ट रूप से संशोधित धारा 7 (घ) के अन्तर्गत नहीं हैं। संशोधित धारा के लिए फिर से आवश्यक है कि उम्मीदवार द्वारा अनुबंध किया जाना चाहिए। अनुबंध में मात्र हित, जब तक कि उम्मीदवार ने सीधे या किसी एजेंट के माध्यम से अनुबंध नहीं किया है, स्पष्ट रूप से उसे निरहित नहीं करेगा। लेकिन संशोधित होने से पहले धारा 7 (घ) तब आकर्षित होती थी, यदि कोई विद्यमान अनुबंध था और संशोधित होने के बाद भी खंड का लागू होना उसी शर्त के अधीन है। यदि कोई विद्यमान अनुबंध नहीं था, तो न तो संशोधित होने से पहले धारा 7 (घ) के अन्तर्गत, और न ही संशोधित होने के बाद, निरहता होगी। वर्तमान मामले में प्रथम उत्तरदाता ने अनुबंध के अपने हिस्से का पालन किया, और बिहार सरकार द्वारा उसे कोई भुगतान नहीं किया गया है। परिस्थितियों में, *चतर्भुज जसानी*¹⁵ के मामले पर अवलंबन करते हुए, हमारा विचार है कि अनुबंध एक विद्यमान अनुबंध था।

15 [1954] एस.सी.आर. 817.

प्रथम उत्तरदाता की ओर से उपस्थित श्री सरजू प्रसाद ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 116-ख द्वारा, उच्च न्यायालय के निर्णय को अंतिम और निश्चयक बनाया गया है और उस निर्णय में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप, भले ही ऐसा प्रतीत हो कि उच्च न्यायालय द्वारा कोई त्रुटि की गई है, न्यायोचित नहीं होगा। लेकिन धारा 116-ख द्वारा संविधान के अनुच्छेद 133 और 136 द्वारा इस न्यायालय को प्रदत्त अधिकार क्षेत्र सीमित नहीं है, और न ही किया जा सकता है। यदि मामले की परिस्थितियां न्यायोचित ठहराती हैं, तो इस न्यायालय के पास उच्च न्यायालय के फैसले को अपास्त करने की शक्ति है, और वास्तव में यह उसका कर्तव्य है। न्यायालय एक ऐसे मामले से निपट रहा है जिसमें एक ऐसा प्रश्न उठता है जो चुनावों की पवित्रता से गहराई से संबंधित है। एक व्यक्ति जिसका कार्यपालिका के साथ संविदात्मक संबंध है, निर्वाचित होने पर, अपने दावे का निस्तारण करने के लिए या अपने लिए लाभ प्राप्त करने के लिए कार्यपालिका पर दबाव डालने में सक्षम होगा, जिसका वह कानूनी रूप से हकदार नहीं हो सकता है। यह धारा 7 (घ) के अन्तर्गत अन्तर्निहित योजना प्रतीत होती है जो किसी व्यक्ति को विधायिका के सदस्य के रूप में चुने जाने से निरहित करती है यदि उसके द्वारा उपयुक्त सरकार के साथ माल की आपूर्ति या किसी कार्य के निष्पादन के लिए उसके व्यापार या व्यवसाय के दौरान किया गया कोई अनुबंध विद्यमान है। यदि, साक्ष्यों पर, अनुबंध का विद्यमान होना जो एक उम्मीदवार को निरहित करता है, स्थापित हो जाता है, तो न्यायालय अपने निष्कर्ष को प्रभावी करने से इनकार करने में न्यायोचित नहीं होगा, विशेष रूप से तब जब प्रश्न विधायिका से उन व्यक्तियों को बाहर रखने में जनता से गहराई से संबंधित है जिनका सरकार के विरुद्ध विद्यमान अनुबंधों से उत्पन्न होने वाला दावा है।

हमारे विचार में इसलिए अपील को स्वीकार किया जाना चाहिए, और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जाना चाहिए और इस न्यायालय और उच्च न्यायालय में लागत के साथ निर्वाचन न्यायाधिकरण के आदेश को बहाल किया जाना चाहिए।

आदेश

बहुमत की राय के अनुसार अपील लागत के साथ खारिज की जाती है।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।